प्रीतिरसावतार महाभावनिमग्न
श्रीराधा बाबा

(प्रथम भाग)

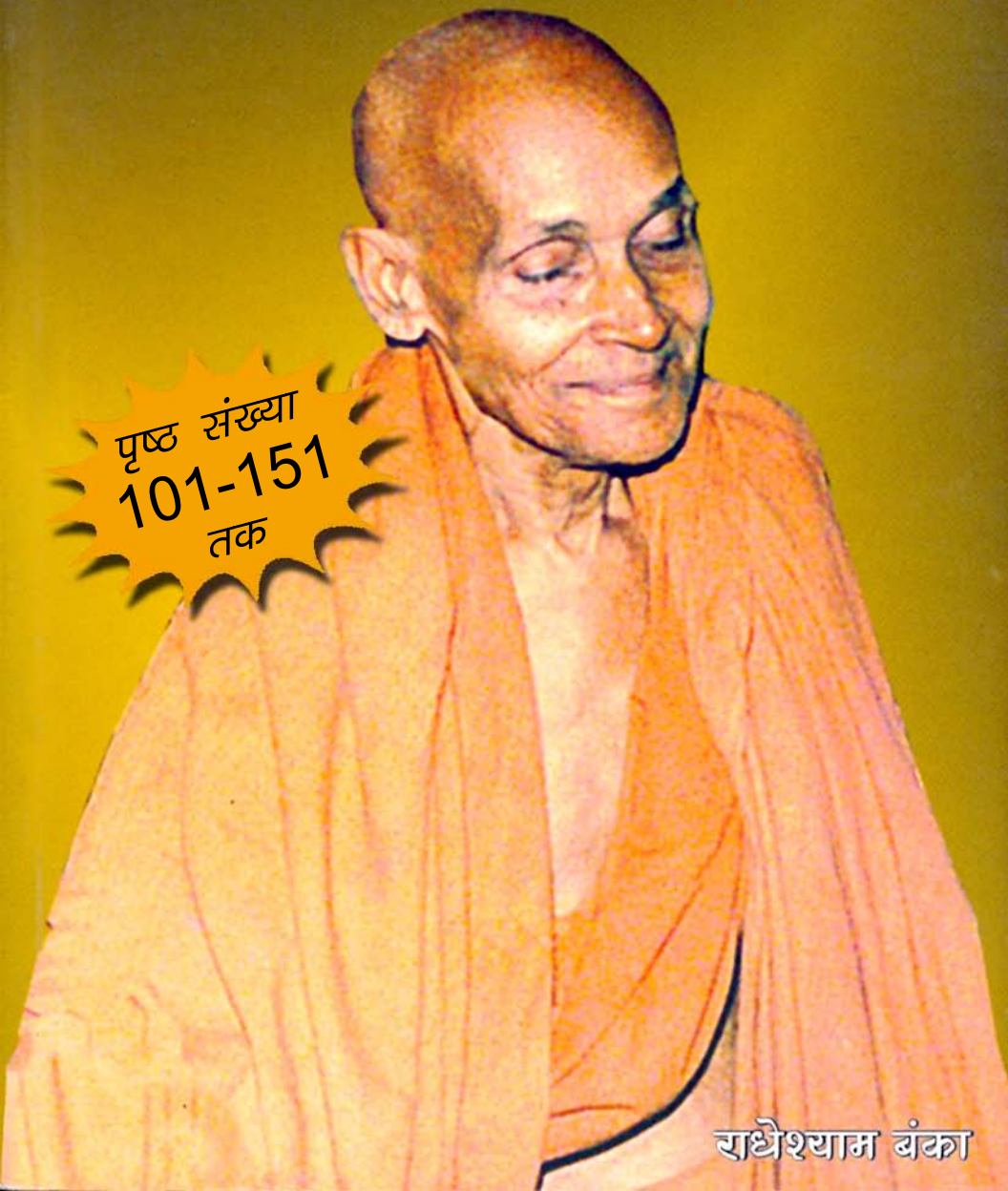

पृष्ठ संख्या
101-151
तक

राधेश्याम बंका

जानकारी होते ही बड़े भाई सोचने लगे कि इस समय इसकी आयु मात्र २२ वर्ष है। ऐसी कच्ची आयुमें इसका संन्यास-व्रत कैसे निभ पायेगा? इसको कैसे समझाया जाये कि मनकी वासनाओंका वेग कितना विकट हुआ करता है। गाँवमें घरपर इसकी पत्नी है, माताजी हैं, पिताजी हैं। इस समाचारसे उन सभीपर क्या बीतेगी? अभी तो इसने अपनी पढ़ाई भी पूरी नहीं की है। संन्यासका निर्णय लेकर चक्रधरने तो बड़ा ही अविवेकपूर्ण कार्य किया है।

चचेरे बड़े भाई श्रीदेवदत्तजीने पुनः बड़े प्यारसे समझाते हुए चक्रधरसे कहा— तुम्हारे लिये संन्यास-धर्म कठिन पड़ेगा। संसारके भोगोंकी क्षणभंगुरता एवं निरर्थकताका सच्चा अनुभव एक भुक्त-भोगीको ही हो पाता है। जिसे ऐसा अनुभव नहीं होता, उनका वैराग्य क्षणिक हुआ करता है। जिसने आवेशमें आकर संन्यास ले लिया है, वह भविष्यमें काम-क्रोधादि विकारोंके वशीभूत होकर यदि अपने पथसे च्युत होता है तो ऐसे पथ-भ्रष्ट संन्यासीका परमार्थ तो सिद्ध होता ही नहीं है, उसके लोक और परलोक भी बिगड़ जाते हैं। इसीलिये अपने ऋषियोंने यह मर्यादा निर्धारित की है कि मनुष्यको तीन आश्रमोंके सोपानोंको पार करनेके बाद ही संन्यासी जीवन स्वीकार करना चाहिये। इतना ही नहीं, महज्जनोंका यह भी कथन है कि घरपर जबतक माता-पिता हों, तबतक पुत्रको संन्यास नहीं लेना चाहिये।

सभीने बड़ा प्रयास किया कि चक्रधर संन्यासके विचारका परित्याग कर दे, किन्तु सारे प्रयास व्यर्थ गये। चक्रधरका निश्चय था अडिग शिला-खण्ड। स्वजन या स्नेही या मित्रोंकी ओरसे जब-जब ममत्व, भय, प्रलोभन, दबाव अथवा सुझावके रूपमें जो-जो भाव-लहरियाँ आती थीं, उस शिला-खण्डसे टकराकर बिखर जाती थीं और इन व्यक्तियोंको क्या पता कि चक्रधर तो ईश्वरीय आदेशका पालन मात्र कर रहा है। जब सारे प्रयत्न असफल हो गये और बड़े भाई श्रीतारादत्तजीने देखा कि चक्रधर अपने निश्चयपर अटल है, तो उन्होंने घरपर माता-पिताजीको उनके संन्यास लेनेके निर्णयकी सूचना भेज दी। गाँवपर माताजी-पिताजी तथा परिवारके अन्य लोग बड़े व्यथित हो उठे। सूचना मिलते ही माता-पिता कलकत्ते आनेके लिये तैयार हो गये, जिससे वे अपने पुत्र चक्रधरको समझा-बुझा सकें। माता-पिता कलकत्ते आनेवाले हैं, यह जानकारी होते ही चक्रधरने अपने बड़े भाईसे कहा— आप माताजी-पिताजीको आनेसे मना कर दें। यदि माता-पिताजी आ

गये तो मैं लापता हो जाऊँगा। आपलोग मुझे समझाने-बुझानेके लिये उन्हें बुलवा रहे हैं और वे लोग यहाँ आनेवाले हैं। इससे कोई लाभ नहीं होगा। यों तो आपलोग जो चाहें सो करें, परंतु यह भी ध्यानमें रखना चाहिये कि चार पैरवाले पशुको बाँधकर भले ही कोई घरपर रख सकता है, पर दो पैरवाले मनुष्यको बाँधना सहज नहीं। मैं आप लोगोंसे अनुरोध करता हूँ कि आपलोग घरवालोंमेंसे किसीको भी यहाँ आनेके लिये सर्वथा मना कर दें। यदि आप लोगोंके द्वारा कुछ भी प्रतिकूल आचरण होगा तो यह निश्चय है कि मैं ऐसा लापता हो जाऊँगा कि भविष्यमें आपलोगोंको मेरे बारेमें कुछ भी जानकारी नहीं मिल पायेगी। इसके विपरीत, यदि आपलोग मेरे कार्यमें बाधा नहीं पहुँचायेंगे तो मैं आपको वचन देता हूँ कि संन्यासी रहते हुए भी मुझसे सम्बन्धित जानकारी आपको समय-समयपर मिलती रहेगी कि मैं कब, कहाँ और कैसे हूँ। अब आप ही लोग निर्णय लें कि क्या करना है। मुझे तो इतना ही निवेदन करना था।

चक्रधरकी बात सुनकर बड़े भाई श्रीतारादत्तजी बड़े ही चिन्तित हो उठे। 'अरध तजहिं बुध सरबस जाता' की नीतिका अनुसरण करते हुए बड़े भाईने गाँवपर पत्र लिख दिया कि माता-पिता कलकत्ता न आयें। पत्र मिलनेपर माता-पिताको अपना हृदय वज्रकी भाँति कठोर बनाना पड़ा। उनके हृदयकी सारी कोमलता कराह रही थी, पर वे निरुपाय थे। विवश होकर उन्होंने कलकत्ते जानेका विचार विसर्जित कर दिया।

सं. १९९२ वि. आश्विन शु. १५ शनिवार (१२ अक्टूबर १९३५) के दिन शारदीय पूर्णिमा थी। इसी पूर्णिमाके दिन अरुणोदयसे पूर्व ही चक्रधर बड़े भाईके पाससे चले गये। वे कहाँ गये, इसकी जानकारी बड़े भाईको नहीं थी। बड़े भाईका अनुमान था कि वह अपने दीक्षा-गुरुके पास गया होगा। वस्तुतः वे गये थे संन्यास ग्रहण करनेकी प्रक्रियाको सम्पन्न करनेके लिये भगवती गंगाके तटपर। संन्यास ग्रहणका मुहूर्त स्वयं चक्रधरने ही निकाला था, परंतु संन्यासकी प्रक्रियासे सम्बन्धित तथ्योंको चक्रधरने स्पष्ट रूपसे किसीके सामने व्यक्त नहीं किया और अभीतक यह एक रहस्य ही है। चक्रधरने इतना तो अवश्य ही कहा है कि उन्होंने संन्यासकी जो दीक्षा ली, उसके साक्षी भगवान शंकर हैं।

इसी पूर्णिमाके प्रातःकाल सूर्योदयके बाद चक्रधर अपने बड़े भाईके

पास वास-स्थानपर लौट आये। केश-मुण्डनके लिये वहींपर नापितको बुलवाया गया। उससे केश-मुण्डनके लिये कहा गया। घरमें कोई शोक-प्रसंग तो था नहीं, अतः वह नापित समझ नहीं पा रहा था कि इन सुन्दर-सुन्दर काले-काले कोमल-कोमल केशोंको उतारनेके लिये क्यों कहा जा रहा है। पहले तो उसने आनाकानी की, पर जब उसे दृढ़ स्वरमें कहा गया तो उसे केश-मुण्डन करना ही पड़ा। वहींपर खड़े-खड़े बड़े भाई शीश-मुण्डन देख रहे थे और उन्होंने बलपूर्वक अपने आँसुओंको रोक रखा था। उनके अन्तरमें व्यथाकी सीमा नहीं थी।

केशोंका मुण्डन होते ही चक्रधर वहीं ध्यानस्थ हो गये। अभी स्नान शेष था, परंतु बाह्य सुधि होनेपर ही तो वह सम्भव हो पाता। बड़े भाईके मनकी दशा विचित्र थी। छोटा भाई अब संन्यासी बनने जा रहा है, यह सोचकर विकलता कम नहीं थी, परंतु ध्यानकी गहरी स्थिति देखकर विस्मयान्विति एवं सुखानुभूति भी कम नहीं थी। सुखानुभूति चाहे जितनी हो, विकलताका वेग बड़ा प्रबल था।

थोड़ी देर बाद चक्रधरको बाह्य ज्ञान हुआ। यज्ञोपवीत-सूत्रका परित्याग तो संन्यासकी प्रक्रियाके समय ही हो गया था, शीश-मुण्डनके समय शिखाका भी परित्याग हो गया। भाईको शिखा-सूत्रसे रहित देखकर बड़े भाइयोंके अनुराग भरे नेत्र बार-बार आर्द्र हो रहे थे। इसके बाद चक्रधरने स्नान किया। बड़े भाईने अपने हाथसे गैरिक वस्त्र दिये। चक्रधरके कहनेपर बड़े भाई ही बाजारसे वस्त्र दो-तीन दिन पहले ले आये थे और उन वस्त्रोंको एक दिन पहले स्वयं चक्रधरने अपने हाथसे गैरिक रंगमें रँगा था। जब बड़े भाई द्वारा प्रदत्त गैरिक वस्त्र चक्रधर धारण कर रहे थे, उस समय बड़े भाई, चचेरे भाई तथा अन्य उपस्थित जनोंका हृदय फटा जा रहा था। उनके नेत्र विकल हो रहे थे और स्वर रुद्ध हो रहा था। सभी विवश थे और इस करुण दृश्यके, करुण कहा जाये अथवा अरुण, इस अरुण दृश्यके सभी मूक दर्शक बने हुए थे।

संन्यास ले लेनेके बाद चक्रधरका नाम हुआ स्वामी श्रीमधुसूदनानन्द, किन्तु यह नाम प्रचलित नहीं हो पाया। लोग उन्हें स्वामी श्रीचक्रधर महाराज ही कहते रहे और भविष्यमें वे श्रीराधाबाबाके नामसे विख्यात हुए।

संन्यास लेते ही चक्रधरने एक बड़ा ही कठोर व्रत यह ले लिया कि अब जीवनमें स्त्री-स्पर्श एवं द्रव्य-स्पर्श होगा ही नहीं। अवश्य ही जन्म-दात्री माँ इस व्रतमें एक अपवाद रही।

संन्यास लेते ही चक्रधरकी जीवन-शैलीमें बड़ा परिवर्तन आया। संन्यासके पूर्व चक्रधर परिवारके बच्चोंके साथ हिल-मिल जाया करते थे और छेड़छाड़ करके हँसते हुए हँसाया करते थे। वे बालकोंके साथ बालक बनकर खेलते-खिलाते थे, परन्तु अब बहुत कम बोलते थे। वे प्रायः विशेष गम्भीर और चिन्तनशील रहा करते थे।

गेरुआ वस्त्र पहनकर चक्रधर जब कालेज गये, तब संगी-साथी लोगोंको चक्रधरकी वेषभूषापर बड़ा आश्चर्य हुआ। प्रोफेसर भी कम चकित नहीं थे यह देखकर कि कालेजके इस प्रतिभासम्पन्न छात्रने यह क्या रूप बना लिया। वे चकित थे और इसीके साथ वे व्यथित भी थे यह सोचकर कि इस मेधावी छात्रने अपना भविष्य बिगाड़ लिया। कुछ चकित थे, कुछ व्यथित थे और कुछ क्षुभित थे कच्ची आयुमें नादानी पूर्ण परिवर्तन देखकर। एक प्रोफेसर महोदयने क्षोभके आधिक्यमें इनको कक्षासे बाहर निकाल दिया। चक्रधर क्लासके बाहर खड़े-खड़े प्रोफेसर साहबका लेक्चर सुनते रहे। जब पीरियड समाप्त हो गया, तब वे प्रोफेसर साहब क्लासके बाहर आये और चक्रधरको अपने साथ ले जाकर कालेजके प्रिंसिपल साहबके सामने खड़ा कर दिया। उन प्रोफेसर साहबको यह विश्वास था कि प्रिंसिपल साहब इस गैरिक वस्त्रधारी छात्रको खूब डाँटेंगे-फटकारेंगे और इस डाँट-फटकारके परिणाम स्वरूप यह छात्र अपने पूर्व रूपमें सहज ही आ जायेगा, परन्तु ऐसा हुआ नहीं। यह संन्यास कोई थोथी भावुकताके आधारपर लिया नहीं गया था। प्रिंसिपल साहबके साथ दो दिनोंतक तर्कपूर्ण विवाद चलता रहा और यह तीव्र विवाद क्रमशः मधुर संवादके रूपमें बदल गया। चक्रधरके तर्क-सम्मत उत्तरोंको स्वीकार करनेके लिये प्रिंसिपल साहब विवश हो गये और फिर प्रिंसिपल साहबकी ओरसे क्लासमें जाने और बैठनेके लिये लिखित अनुमति मिल गयी। अब चक्रधर पूर्ववत् कालेज जाते रहे।

चक्रधरको कालेजमें जाने और क्लासमें बैठनेके लिये प्रिंसिपल साहबने अनुमति प्रदान कर दी है, यह जानकर उन प्रोफेसर साहबको बड़ा

आश्चर्य हुआ। चक्रधरको अनुमति दे दिये जानेसे उन प्रोफेसर साहबने अपनी मानहानि समझी। अपमान-बोधकी भावनाने उनको चैनसे बैठने नहीं दिया। उनके मनमें जिज्ञासाका उद्भव हुआ कि इस छात्रके जीवनके बारेमें कुछ जानकारी प्राप्त करनी चाहिये। चक्रधर कालेजसे अब घर पैदल ही आते थे। वे प्रोफेसर साहब चक्रधरके साथ पैदल चलते हुए घरपर आये और पं.श्रीदेवदत्तजीसे मिले। पण्डितजीसे चक्रधरके पूर्व जीवनकी कुछ झलक पाकर उन प्रोफेसर साहबको बड़ा सन्तोष हुआ, केवल सन्तोष ही नहीं, मनमें खेद भी हुआ कि अनजानेमें इस सुयोग्य भविष्णु छात्रके प्रति अभद्र व्यवहार मेरे द्वारा हो गया। एक ओर उन्होंने पं.श्रीदेवदत्तजीको परम सान्त्वना प्रदान की तो दूसरी ओर गैरिक वस्त्रधारी अपने छात्रको विपुल आशीर्वाद दिया। अपने छात्रके प्रति मंगल कामना व्यक्त करते हुए उन्होंने पण्डितजीसे कहा— यह होनहार बालक संन्यासी होकर भी कुलका गौरव होगा और आपके वंशकी कीर्तिको बढ़ायेगा।

प्रोफेसर साहबके इस भावभरे उद्‌गारको सुनकर पं.श्रीदेवदत्तजी मिश्रको बड़ा सन्तोष हुआ।

* * * * *

संन्यासी वेष में गाँव पर

(अब यहाँसे आगे श्रीचक्रधर मिश्रको 'बाबा'के नामसे सम्बोधित किया जायेगा)

संन्यास-धर्मके अनुसार संन्यासीको एक बार अपने माता-पिताके पास जाना चाहिये, अतः संन्यास लेनेके बाद तथा इण्टरमीडियेटकी परीक्षा देनेके पूर्व बाबा अपने गाँव गये। माँ तो अपने बेटेको देखनेके लिये अत्यधिक अकुला रही थी। अपने पुत्रके लिये माँके हृदयमें कितनी तड़फन थी, यह तो केवल कोई वत्सला माँ ही जान सकती है। 'घायल की गति घायल जाने, और न जाने कोय'।। बाबाके माता-पिता तो उसी समय फखरपुर गाँवसे कलकत्ते जानेके लिये प्रस्तुत थे, जब उन लोगोंको पुत्रके संन्यास लेनेके निश्चयकी सूचना मिली थी। परिस्थितियोंने विवश कर दिया, इसलिये वे लोग जा नहीं पाये। भले ही वे लोग नहीं गये और भले

ही माँका शरीर गाँव फखरपुरमें था, परंतु वह तो मनसे प्रतिक्षण अपने पुत्र चक्रधरके पास कलकत्ते थी। उसने न केवल नौ मासतक उसे अपने गर्भमें धारण किया था, अपितु नौ वर्षोंतक उसको अपने स्तनका दूध पिलाया था। अपने पुत्रकी सुन्दरता, सुशीलता, बुद्धिमत्ता, योग्यता आदिको देखकर उसे मन-ही-मन गर्व-बोध होता था। उसे क्या पता था कि यह महान गर्व-बोध ही एक दिन विशाल व्यथा-कोषमें परिणत हो जायेगा। परिवारके अथवा गाँवके लोग जब उसके पुत्रकी सराहना करते थे तो वह आनन्द-सिन्धुमें डूब जाया करती थी, पर अब वही अपार सिन्धु बन गया वेदनाका अथाह सागर, जहाँ न जीवन था और न थी मृत्यु। माँको नितान्त खिन्नता थी वंश-परम्पराकी समाप्तिको देखकर। माँके चार पुत्र थे, प्रथम तीनके कोई पुत्र-रत्न था ही नहीं। माँने वंश-वेलिके विस्तारकी आशा अपने चक्रधरपर टिका रखी थी, पर अब तो उस आशाका आधार ही समाप्त हो गया चक्रधर यह क्या कर बैठा? इससे तो कुलोच्छेदन ही हो गया। माँने न जाने कितने सुनहले-रुपहले सपने बना रखे थे, अब वे सब सपने उसके हृदयको साल रहे थे। और ऐसी ही व्यथापूर्ण दशा थी पिताजीकी। माँ तो आँसू बहाकर कभी-कभी स्वयंको हलका कर लेती थी, पर पिताजीकी स्थिति और गम्भीर थी। उनके आँसू घुन बनकर भीतर-ही-भीतर जीवनको खोखला बना रहे थे।

माता-पिताको सबसे अधिक कष्ट दे रही थी पुत्र-वधूकी चिन्ता। वह तो अभी निरी अबोध ग्रामीण बालिका ही है। यौवनकी देहरीपर अभी उसके चरण पड़े ही नहीं हैं और अब उसे असमयमें ही क्या विरक्ति एवं विवेककी, तप और त्यागकी शिक्षा देनी पड़ेगी? हाय विधाता! तूने यह क्या कर दिया? न जाने कैसे उस हठीलेका संन्यास-धर्म निभ पायेगा और न जाने कैसे इस सरलाकी लम्बी आयु कट पायेगी? माँका हृदय व्यथासे इतना अधिक अवसन्न था कि दुःखके तीव्रावेगमें उसका पूजा-पाठ ही छूट गया।

और सबसे अधिक करुण स्थिति थी फखरपुर ग्रामकी उस तपस्विनीकी, जिसे अनुरागके आरम्भमें ही वैराग्य अंगीकार करना पड़ा। पतिने जब संन्यास ले लिया तो अब शृंगारसे, सुवाससे, स्वादसे क्या प्रयोजन रह गया? यशोधरा और विष्णुप्रियाके दर्दभरे अश्रु एक बार फिर

फखरपुर ग्राममें अवतरित हो उठे रोने और रुलानेके लिये। पति-वियुक्ता उस तपस्विनीके जीवनमें अब यशोधरा और विष्णुप्रियाकी अश्रु-गाथा ही तो रह गयी थी। पहले वह मन-ही-मन अपने सुहागके गीत गाया करती थी। जिसका पति सुन्दर हो, स्वस्थ हो, सुशील हो, सुकण्ठ हो, सुविज्ञ हो, वह अपने सिन्दूरके गीत क्यों नहीं गाये? उसकी मान्यता थी कि न जाने कितने जन्मोंके संचित पुण्योंकी राशि एक साथ उदित हो उठी थी, जो ऐसे पतिकी जीवन-संगिनी बननेका सौभाग्य मिला। उसका सौभाग्य अवश्य ही अन्योंके लिये प्रशंसनीय बन गया था। पर अब? अब उसकी स्थिति थी 'जथा पंख बिनु खग अति दीना।' अब वह पंख-कटे-पक्षीकी भाँति स्वयंको अति असहाय अनुभव कर रही थी। जो कलतक उसके सौभाग्यकी सराहना करती थीं, अब वे सहानुभूति प्रदर्शित करती हैं, उसे सान्त्वना देनेका प्रयास करती हैं। कोई कितना ही कहे और समझाये, अब आँसूकी धारा ही उसके एकान्तकी सहेली थी। ऐसा लगता है मानो नवद्वीपकी उस विष्णुप्रियाका रोदन ही इस तपस्विनीके प्रकोष्ठमें उतर आया हो। रोदनका सागर केवल उतर ही नहीं आया था, वह रह-रह करके उभर रहा था, उमड़ रहा था।

क्या माँ, क्या पिता, क्या यह तपस्विनी और क्या अन्य जन, सभी लोग बाबाके दर्शनके लिये, एक बार दर्शनके लिये तरस रहे थे और बाबा अपने ग्राम आये। जिस समय बाबा अपने गाँव फखरपुर पहुँचे, उस समय थोड़ी रात बीत चुकी थी। वे माता-पिताके दर्शनोंके लिये मकानके भीतर गये और जाकर आँगनमें खड़े हो गये। उनके आनेका समाचार सुनते ही माँ दौड़ी हुई आयी और अपने युवक संन्यासी पुत्रको हृदयसे लगाकर रोने लगी। अपनी अजस्र अश्रुधारासे वह उनके गेरुवे कपड़ोंको भिगो रही थी। संन्यासी पुत्र और विह्वला माताके भावार्द्र मिलनका वह दृश्य कैसा था, इसका वर्णन कर सकना कठिन है।

अति अनुराग अंब उर लाये। नयन सनेह सलिल अन्हवाए॥
तेहि अवसर कर हरष विषादू। किमि कवि कहे मूक जिमि स्वादू॥

माँका रुदन कम हो ही नहीं रहा था। बाबाने अपने वचनामृतसे माँको शान्त करनेकी चेष्टा की, पर वह रुदन तो उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा था। बहुत सान्त्वना देनेपर रुदन तो थोड़ा कम हो गया, परंतु

हिचकियाँ एवं सिसकियाँ पूर्ववत् थीं। माँ कुछ बोलना चाह रही थी, पर बोल नहीं पा रही थी। रह-रह करके अपने संन्यासी पुत्रके मुण्डित शीशपर हाथ फेर रही थी। हाथ कभी सिरपर और कभी पीठपर फिरता ही रहा। माँने बोलनेकी चेष्टा की, पर फिर वाणी अवरुद्ध हो गयी। रुक-रुक करके माँ कहने लगी— बेटा! तुमने यह क्या किया? तुम्हारा यह वेष? क्या सचमुच तुमने मुझको छोड़ दिया?

इतना कहते-कहते फिर रुदनका प्रवाह बह पड़ा, नहीं-नहीं, फट पड़ा। अपनी माँके चरणोंमें, सिर रखकर बाबाने सान्त्वना दी और बोले— माँ! तुम इतनी अधीर, इतना विकल क्यों हो रही हो? तुम घबड़ाओ नहीं। मैं तो तुम्हारा बेटा था, अभी भी ज्यों-का-त्यों हूँ। संन्यासीका बाना लेनेसे मैं तुम्हारे लिये बदल गया क्या? सर्वथा नहीं। मैं तो सदा तुम्हारा ऋणी था, हूँ और रहूँगा। तुम्हारे ऋणसे मुक्त होना मेरे लिये सम्भव नहीं मैं तुम्हारे लिये वही हूँ, जो पहले था। तुम मेरे लिये तनिक भी चिन्ता मत करो। तुम विश्वास करो, मुझे किसी प्रकारका भी कष्ट नहीं होगा। मैं वचन देता हूँ कि मैं जहाँ भी रहूँगा, तुम्हें पता रहेगा और तुम्हारी मृत्युके समय मैं तुम्हारे पास रहूँगा। तुम मुझे आशीर्वाद दो कि जिस महान उद्देश्यके लिये मैंने यह वेष लिया है, वह सफल हो।

इस प्रकार बाबा बहुत देरतक माँको सान्त्वना दे-दे करके धीरज बँधाते रहे। पुत्रके आनेका समाचार सुनकर पिताजीके भी धैर्यका बाँध टूट गया था और अपने कमरेमें बैठे-बैठे अश्रु मोचन कर रहे थे। उनका रुदन सुनकर बाबा तुरंत पिताजीके पास गये और उनके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया। पिताजीके नेत्रोंकी दृष्टि क्षीण हो गयी थी। उन्होंने अपने संन्यासी पुत्रको उठाकर गलेसे लगा लिया और माँकी भाँति सिसकते हुए बोलने लगे— बेटा! तुमने यह किया! अपने बूढ़े पिताको क्यों छोड़ दिया? प्रभुने तुम जैसा सुयोग्य पुत्र मुझको दिया। तुमको देख-देखकर मुझे विचित्र सुखका अनुभव हुआ करता था। तुम्हारे बारेमें मैंने न जाने क्या-क्या सोच रखा था, पर आज वह सब सदाके लिये अँधेरेमें छिप गया। तुमने संन्यास क्या लिया, मेरा सहारा छूट गया, टूट गया।

बाबाने पिताजीको सान्त्वना दी— आप इतने कातर क्यों हो रहे

हैं? क्या मैं आपका पुत्र नहीं रहा? मैं कहीं भी रहूँ, आपका पुत्र ही कहलाऊँगा और मेरी सफलता आपके सुयशको ही बढ़ायेगी। आपके वात्सल्यने ही मुझे पाल-पोसकर इतना बड़ा किया है और आपका आशीर्वाद ही सारे विघ्नोंका निवारण करके मुझे सफलता प्रदान करेगा। आप आशीर्वाद दें, जिससे उस महान उद्देश्यकी सिद्धि हो।

पिताजीको सान्त्वना देकर बाबा पुनः मकानके आँगनमें आ गये और आ गया ध्यान उस तपस्विनीका भी। वह तो दूसरे कमरेमें बैठी अपने अश्रुओंसे आँचलको भिगो रही थी। वह दुखिया अब केवल अश्रुओंसे ही अपने कपोलोंको, अपने आँचलको भिगो सकती थी। व्यथाके अभिव्यक्त हो जानेका एक मात्र यही माध्यम रह गया था। अधरोंसे बोलकर कुछ व्यक्त करनेका अधिकार अब उसके पास कहाँ रहा? माता और पिताने बोलकर अपने दुःखोद्‌गार संन्यासी पुत्रके सामने व्यक्त कर दिये, भले यह अभिव्यक्ति स्खलित वाणीमें हुई हो, परंतु उन दुःखोद्‌गारोंकी येन-केन-प्रकारेण अभिव्यक्ति तो हो ही गयी थी। माता-पिताको कुछ कहनेका अवसर मिल गया था, परंतु नियतिकी वक्रताने भावोंकी अभिव्यक्तिका सारा अधिकार अब उससे छीन लिया था। इस तपस्विनीके भाग्यकी काली रेखाएँ बड़ी क्रूर थीं। पहले जो अपने जीवनधनके समक्ष मनका सब कुछ रख सकती थी, कह सकती थी, अब उसीके अधर सर्वथा विजड़ित हो चुके थे। वाम विधाताने दृश्य ऐसा परिवर्तित कर दिया कि संभाषण तो दूर रहा, वह अब सामने भी नहीं आ सकती थी। आँगनमें खड़े-खड़े बाबाने उस तपस्विनीके लिये संदेश कहलवाया— अब उनके साथ भाई-बहिनका ही सम्बन्ध रहेगा। पूर्वाश्रमकी बात बदल गयी। रात बीत गयी। अरुणोदयकी नवीन वेलामें सम्बन्धके नवीन स्वरूपको सहर्ष स्वीकार कर लेना चाहिये। यदि उन्हें वाञ्छित हो तो उनके पढ़ने-लिखनेकी व्यवस्था किसीके द्वारा करवायी जा सकती है, जिससे भविष्यमें जीवन भार स्वरूप न अपने लिये रहे और न दूसरोंको लगे।

उस तपस्विनीने संदेश सुन लिया। जब संन्यासका समाचार मिला था, तब भी मौन थी, संन्यासी वेषमें देखकर भी मौन रही और संदेशको सुन लेनेके बाद भी मौन ही रहना था। उसके दोनों अधर ऐसे बन्द हुए

कि फिर खुले ही नहीं। श्रीमैथिलीशरणजी गुप्तके शब्दोंमें उस तपस्विनीके मनकी स्थिति थी—

हा, स्वामी! कहना था कितना, कह न सकी, कर्मोंका दोष।
पर जिसमें सन्तोष तुम्हें है, मुझे उसीमें है सन्तोष।।

उस तपस्विनीके मनमें बार-बार यही भाव उठ रहे थे— आपके पावन चरणोंकी सतत स्मृति ही मेरे जीवनका आधार है और उन युगल चरणोंपर सतत अश्रु-अर्पण ही मेरे अर्चनका स्वरूप है।*

बाबा थोड़ी देर बाद आँगनसे मकानके बाहर आ गये। बाबा गाँवमें दो-तीन दिन रहे, पर घरमें नहीं ठहरे। घरके बाहर ही उनका निवास रहा। बाबा जितने दिन गाँवपर रहे, माँ अपने संन्यासी पुत्रके पास ही रही। बस, शौच-स्नानके लिये विलग होना पड़ता था। अपने पुत्रके स्नानके लिये जल भी स्वयं ही रखती थी। प्रातःकाल शौचसे निवृत्त होकर बाबा स्नान करनेवाले थे। उसी समय माँने बाबाके शरीरपर ढेर सारा कड़ुआ तेल (सरसोंका तेल) लगा दिया। बचपनमें बाबा स्नानके पहले अपने सिरपर कड़ुआ तेल लगाया करते थे। संन्यासीके लिये तेल

---

*पूज्या तपस्विनी मैयासे सम्बन्धित एक प्रसंग है, जिससे उनके समर्पण-भावकी झीनी-सी, मीठी-सी झलक देखनेको मिलती है। बाबा ७ दिसम्बर १९७८ को मौन व्रत धारण करेंगे, इसका परिज्ञान होते ही देशके कोने-कोनेसे लोग गीतावाटिका आने लग गये। आनेवाले लोगोंसे मिलकर बाबा उन्हें विदाई दे देते थे। आनेवाले यदि ७ दिसम्बरतक रहते तो गीतावाटिकामें न जाने कितनी भीड़ हो जाती। अनेक स्वजन बाबासे मिलकर चले गये, इसके बाद भी दिसम्बरके प्रथम सप्ताहमें पर्याप्त भीड़ रही। अधिकांश लोग कार्यालयके सभाकक्षमें ठहरे थे। सभी लोग साथ-साथ रहते और साथ-साथ भोजन करते।

भोजनके समय एक पंक्तिमें पुरुष बैठते थे और दूसरी ओर महिलाएँ बैठकर भोजन करती थीं। पुरुषोंकी ओर पुरुष तथा स्त्रियोंकी ओर स्त्रियाँ परोसती थीं। इन परोसनेवाली स्त्रियोंमें विमला बहिन भी थीं, जो बाबाकी भिक्षा भी बनाया करती थीं भोजन करनेके लिये जो स्त्रियाँ बैठी थीं, उनमेंसे एक बहिनकी ओर विमलाका मन बड़ा खिंचता चला जा रहा था। विमलाको बार-बार ऐसा लग रहा था कि वह कोई अपनी-से-अपनी है, सगी है, परम सगी है, पर उससे बात कैसे करें। यह तो पहले

लगाना उचित नहीं, पर बाबा उस समय कुछ बोले नहीं। मैंने बस, एक बार ही तेल लगाया। बाबाके मौनसे वह समझ गयी कि जिस प्रकार संन्यासीके लिये घरमें प्रवेश उचित नहीं, उसी प्रकार तेलका प्रयोग भी उचित नहीं। मैंने वह तेल तो वात्सल्यवशात् लगाया था।

माँ अपने हाथसे बाबाको भोजन कराती थी। एक बार पास बैठी हुई माँसे बाबाने पूछा— मैंने ऐसा सुना है कि तुमने पूजा-पाठ ही छोड़ दिया है।

भोली तथा वत्सला माँने सहज रीतिसे कहा— वह भगवान भी भला कैसा है, जो मेरे होनहार बेटेको मुझसे अलग कर दे। मेरा तो उस भगवानपरसे विश्वास ही उठ गया है।

कभी गीतावाटिका आयी नहीं। भले पहले कभी न आयी हो, पर मन बार-बार कह रहा था कि परम आत्मीय है। बात किये बिना मन भी नहीं मान रहा था और बात करनेका साहस भी नहीं हो रहा था। एक दिन बीता, दो दिन बीता, तीसरे दिन तो विमलाके मनमें बेकली हो उठी। दोपहरको भोजन करते समय विमलाने उस नवागन्तुकासे पूछ लिया— आप कहाँसे आयीं हैं?

उन बहिनने कहा— पटनासे।

विमलाने उलटकर कहा— लगता है, आप कुछ छिपाकर बोल रही हैं।

उसने फिर कहा— इसमें भला छिपानेकी कौन-सी बात है?

विमलाने तुरन्त कहा— आप जो भी कहें, पर मेरा मन कुछ और ही कह रहा है।

उसने फिर कहा— आप ऐसा क्यों सोच रही हैं?

विमलाने कहा— हो सकता है, मेरा सोचना गलत हो, पर मन बार-बार कह रहा है कि आप बाबाके गाँव फखरपुरसे आयी हैं। आप विश्वास करें, मैं किसीसे कुछ कहूँगी नहीं। विमला बहिनका अनुमान सर्वथा सही था। फखरपुरवाली पूज्या तपस्विनी मैयाने ही इसे भेजा था। इसका नाम था बहिन सुशीला। तपस्विनी मैया अपने जीवनधनको साधुजी ही कहा करती थीं। साधुजीके समाचार जाननेकी बड़ी चाह थी और उनकी कोई निजी वस्तु मिल जाये, जिसे वे अपने पूजाघरमें रख सकें। तपस्विनी मैयाने ही दो-तीन व्यक्तियोंके साथ सुशीला बहिनको गोरखपुर भेजा था और अत्यधिक सावधान कर दिया था परिचय बतानेके सम्बन्धमें। यदि लोग जानना ही चाहें तो यही उत्तर देना चाहिये कि पटनासे आये हैं। तपस्विनी मैयाको रंचमात्र भी अभीष्ट नहीं था कि इन लोगोंके वहाँ होनेसे किसी प्रकारकी

बाबाने फिर पूछा— तुम तो पहले बहुत पूजा-पाठ करती थी। पूजा-पाठ किये बिना कुछ खाती नहीं थी। तेरे नियम बड़े कठोर थे। क्या सचमुच तुमने छोड़ दिया?

मैंने बताया— बस, केवल दो माला जप करती हूँ।

तब बाबाने पूछा— जब तेरा विश्वास उस भगवानपर रहा ही नहीं, तब तू फिर दो मालाका जप क्यों करती है?

मैंने उसी सरल रीतिसे उत्तर दिया— एक माला तो इसलिये कि शायद भगवान हों। यदि वे हों तो एक माला उनके लिये जपती हूँ और दूसरी

प्रतिकूल परिस्थिति उत्पन्न हो। जिस रूपमें सावधान किया गया था, बहिन सुशीला तदनुरूप ही कार्य कर रही थी, पर बहिन विमलाने तो सारी पोल ही खोल दी। बहिन सुशीलाको बड़ा आश्चर्य हो रहा था विमलाके अनुमानपर। वह कहाँतक छिपाती? भय-संकोच-लज्जा आदि अनेक प्रकारके भाव बहिन सुशीलाके नेत्रोंमें उतर आये।

सुशीला बहिनके मौनने स्वतः ही विमलाके अनुमानपर सहीकी छाप लगा दी। विमलाने पुनः आश्वस्त करते हुए उसे धीरे-धीरे कहा— तनिक भी घबराना नहीं। मैं किसीसे कुछ नहीं बताऊँगी। तुम आयी, बड़ा अच्छा किया। आना ही चाहिये था। और कौन-कौन आया है?

भोजनके बाद विमलाने बातें करके पूरा पता लगा लिया कि कौन-कौन आया है और कहाँ ठहरे हैं। अब विमला सभाकक्षमें जाती, उन लोगोंसे मिलती तथा उन लोगोंके सुख-सुविधाका अधिक-से-अधिक ध्यान रखती।

सुशीला बहिनको भी तो एक ऐसे आत्मीयकी आवश्यकता थी ही, जो तपस्विनी मैयाके मनोरथको पूर्ण कर सके। ज्यों ही विमलाको पता चला कि उन मैयाने बाबाके निजी उपयोगकी कोई वस्तु मँगवायी है, विमला उसकी व्यवस्थामें संलग्न हो गयी। बहुत प्रयास करनेके बाद पुरानी कुटियाके स्नानघरमें पड़ी हुई बाबाकी पुरानी चरण-पादुका प्राप्त हो गयी। जब यह चरण-पादुका विमलाने सुशीला बहिनको दी, तो उसके आनन्दकी सीमा नहीं थी। गोरखपुरसे वापस लौटकर सुशीला बहिनने वह चरण-पादुका तपस्विनी मैयाको दी। चरण-पादुकाके मिलते ही तपस्विनी मैयाने उसे प्रणाम किया, फिर अपने मस्तकपर रखा और तदुपरान्त उन्होंने उसे पधरा दिया अपने पूजागृहमें, बाबाके चित्रात्मक श्रीविग्रहके समक्ष। वस्तुतः बाबाकी स्मृति ही और उस पावन स्मृतिका परिपोषण-परिवर्धन करनेवाली वस्तुओंका संग्रह ही उन तपस्विनी मैयाके जीवनका आधार था।

माला तुम्हारे लिये। तुमने बड़ी कच्ची आयुमें संन्यास ले लिया। भगवानसे प्रार्थना करती हूँ कि मेरे बेटेका धर्म निभा देना। कहीं मेरी कोखमें कलंक न लग जाय।

माँके मुखसे इतना सुनना था कि बाबाके नेत्रोंसे अश्रुकी धारा बह चली। बाबाने तुरंत अपनी माँसे कहा– तू विश्वास रख। तेरी कोखको कभी कलंक नहीं लगेगा। यह मैं किसी ऐसी अचिन्त्य शक्तिके बलपर कह रहा हूँ, जो मेरे जीवनका संचालन कर रही है। इसके अतिरिक्त तेरा वात्सल्य भी तो मेरे लिये रक्षा-कवचका कार्य करेगा। तू सच मान, तेरी कोख कलंकित नहीं, अपितु उसकी कीर्ति अधिकाधिक उज्ज्वल ही होगी।

अत्यधिक छलछलाते प्यारमें भरकर माँ अपने संन्यासी बेटेके सिरपर हाथ फेरने लगी। दो-तीन दिन बाद बाबाने अपने गाँवसे विदाई ली। घरवालोंकी तो बात ही क्या, आस-पासके गाँवके लोग भी जुट आये। सबका मन व्यथाके भारसे बोझिल था। सबकी आँखोंमें आँसू थे। कई तो सिसक रहे थे। चलते-चलते भरी भीड़में माँने अपने बेटेको खिलाया। गाँवसे विदा होकर बाबा कलकत्ते आ गये इण्टरमीडिएटकी शिक्षाको पूर्ण करनेके लिये।

* * * * *

संन्यासोपरान्त इन्टरमीडिएट की पढ़ाई पूरी करना

फखरपुर ग्राममें बाबा अपने माता-पिता तथा पारिवारिक जनोंसे मिलकर कलकत्ता वापस आ गये और नियमित रूपसे कालेज जाने लग गये। इस समय बाबा कलकत्तेमें इंटरमीडिएटके द्वितीय वर्षमें पढ़ते थे। काषाय वस्त्र धारण करनेके उपरान्त बाबाने अपने बड़े भाइयोंसे कहा था– इंटरमीडिएटकी शिक्षामें डेढ़ वर्षतक आपने मुझपर बहुत व्यय किया है। इस व्ययको निरर्थक करना उचित नहीं लगता, अतः मैं इंटरमीडिएटकी पढ़ाईको पूरा करके परीक्षा दूँगा, जिससे आप लोगोंके मनकी सन्तुष्टि हो सके। इस छः-सात मासकी पढ़ाईके बाद जागतिक विषयोंसे सम्बन्धित मेरा अध्ययन समाप्त हो जायेगा। आप सभी लोग मुझे आशीर्वाद दीजिये कि जिस आध्यात्मिक विद्यार्जनके लिये इस

संन्यासी वेषको धारण किया है, वह मुझे प्राप्त हो।

गाँवसे वापस आनेके बाद बाबा अपनी साधना और स्वाध्यायमें तल्लीन हो गये। आध्यात्मिक ग्रन्थोंके स्वाध्यायमें ही उनकी रुचि रहा करती थी। बाबा पाठ्यक्रमकी पुस्तकें बहुत कम पढ़ते थे। परीक्षाके जब एक-दो मास रह गये, तब उन्होंने परीक्षा देनेकी दृष्टिसे उन पुस्तकोंको पढ़ना आरम्भ किया था। इस थोड़े-से पठन-पाठनके द्वारा ही उन्हें पूर्ण सफलता मिली। उन्होंने इंटरमीडिएटकी परीक्षा प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण की। यह पठन-पाठन तो बाबाने किया था केवल अपने बड़े भाइयोंकी प्रसन्नताके लिये। इस पठन-पाठनकी अवधिमें समय- समयपर बड़े भाइयोंने कई बार बाबासे कहा कि तुम आगे भी पढ़ो और अधिक योग्यताका सम्पादन करो, किन्तु इसके लिये बाबा कभी भी राजी नहीं हुए। बाबाकी प्रतिभासे महाविद्यालयके अध्यापकगण भी बहुत प्रभावित थे। उनमेंसे कई अध्यापकोंने ऊँची पढ़ाई करनेके लिये सुझाव दिया और व्यय-भार-वहनका आश्वासन दिया, पर यह भी सुझाव बाबाको स्वीकार नहीं था। जब-जब ऐसा सुझाव आता, बाबा यही कहते– अब तो दूसरी ही पढ़ाई पढ़नी है।

इंटरमीडिएटकी परीक्षा देनेतक बाबा अपने बड़े भाइयोंके साथ रहे। वे कक्षामें पढ़नेके लिये उस संन्यासी वेषमें ही जाते। उनके संन्यासी वेषको देखकर सहपाठी चुटकी लेते, किन्तु अब तो वेष-परिवर्तनके साथ-साथ बाबाके बोलने-मिलने-रहने-चलनेका सारा ढंग ही बदल चुका था। बाबा सबको संयमित वाणीमें उत्तर देते हुए सबका समाधान करते अथवा मौन रहते।

बाबाका संन्यास लोगोंके लिये आश्चर्य और चर्चाका विषय बना हुआ था। एक बार बाबा कलकत्ते शहरमें सड़कसे जा रहे थे। बाबाको पता नहीं कि उनके पीछे-पीछे कलकत्ता विश्वविद्यालयके एक प्राध्यापक चले आ रहे हैं। उन प्राध्यापक महोदयने गैरिक वस्त्रोंमें भी अनुमान लगा लिया कि यह सम्भवतः वही चक्रधर मिश्र नामका छात्र है, जिसकी छाप कालेजके विद्यार्थियोंपर है। वे चाह रहे थे कि इससे दो बात करूँ। बाबा कालेज- स्क्वायर नामक स्थानपर आकर एक बेंचपर बैठ गये। बाबा बैठे ही थे कि वे प्राध्यापक महोदय सामने आकर खड़े हो गये। बाबाने

पहचान लिया कि ये अर्थशास्त्र विभागके अध्यक्ष हैं। उन्हें सामने देखकर बाबा तुरन्त खड़े हो गये तथा उनसे बेंचपर बैठनेके लिये अनुरोध करने लगे। प्राध्यापक महोदयने कहा— आप ही बैठें।

बाबाने कहा— यह कैसे हो सकता है कि मैं बैठा रहूँ और आप खड़े रहें?

प्राध्यापक महोदयने कहा— आपने गैरिक वस्त्र धारण कर लिया है, अतः धर्म-मर्यादाके अनुसार मेरा खड़ा रहना ही उचित है।

इतना कहकर उन्होंने फिर पूछा— मेरा अनुमान सही है क्या कि आप वे ही चक्रधर मिश्र नामक विद्यार्थी हैं?

बाबाने उनके कथनका अनुमोदन किया। वात्सल्यकी अधिकतामें उनके नेत्र सजल हो उठे। फिर स्नेहभरी वाणीमें उन्होंने कहा— मैं लगभग एक मीलसे आपके पीछे-पीछे चला आ रहा हूँ। आपको संन्यासी वेषमें देखकर मेरे मनमें एक जिज्ञासा उत्पन्न हो गयी। इतनी छोटी उम्रमें आपने संन्यास क्यों ले लिया?

उनके प्रश्नका उत्तर तुरन्त दे सकना बाबाके लिये कठिन हो गया। यह सम्भव नहीं था कि जीवनके सारे चढ़ाव-उतारका वर्णन संकेत रूपमें भी कुछ क्षणोंके भीतर प्रस्तुत कर दिया जा सके। उस असमंजसकी स्थितिमें बाबाने केवल इतना ही कहा— जगतमें कुछ सार दिखलायी नहीं दिया, अतः जगतसे अतीत परम तत्त्वकी प्राप्तिके लिये संन्यास ले लिया।

इस संक्षिप्त उत्तरसे प्राध्यापक महोदयको बड़ा सन्तोष हुआ और उनके नेत्रोंसे कुछ स्नेह-बिन्दु कपोलोंपर ढुलक आये। वत्सलतापूर्ण विभोर वाणीमें वे बाबाको आशीर्वाद देने लगे— मेरे वत्स! तेरा मंगल हो और तुम्हारे उद्देश्यकी सिद्धि हो।

इस प्रकारका हार्दिक सद्भाव एवं सहज आशीर्वाद बाबाको समय-समयपर महज्जनोंसे मिलता रहा और गुरुजनोंका यह आशीर्वाद बाबाके जीवनमें सदैव मंगलका विधान करता रहा।

एक दिन बाबाके बड़े भाई पण्डित श्रीतारादत्तजी मिश्रने पूछा— भविष्यमें तुम्हारे भोजनकी क्या व्यवस्था रहेगी?

बाबाने कहा– भिक्षा द्वारा जो मिल जायेगा, उसीसे शरीरका निर्वाह होगा। यदि कभी भिक्षा नहीं मिली तो कलकत्तेमें श्रीमल्लिकजीके यहाँ कँगलोंको भात दिया जाता है, उसी भातसे भूखका निवारण करूँगा।

यह सुनकर बड़े भाई श्रीतारादत्तजीकी आँखें भर आयीं तथा कहने लगे– ऐसा करनेकी बात तुम क्यों सोचते हो? घरपर खेत है, जमीन है। यदि तुम स्वीकार करो तो तुम्हारे नाम कर दें, इससे शरीर-निर्वाहकी समस्या ही नहीं रहेगी।

बाबाने कहा– यदि यही करना होता तो फिर यह काषाय वस्त्र क्यों धारण करता?

इस उत्तरसे बड़े भाई श्रीतारादत्तजीको बड़ी विह्वलता हुई।

संन्यास ले लेनेके बाद बाबाको एक दिन एक पुराना प्रसंग स्मरण हो आया। तब बाबा गया जिला स्कूलमें पढ़ते थे। तभी एक रमल विद्या जानने वाले साधुसे भेंट हुई थी। उस साधुने कहा था कि इतने वर्ष, इतने मास और इतने दिनके बाद तुम्हारा सर्वोच्च भाग्योदय होगा। बाबाने जब दिनोंको जोड़ा तो पता चला कि उस रमल विद्यावाले साधुने जो कहा था, वह पूर्णतः सही कहा था। बाबाने बतलाया कि संन्यास लेते ही उन्हें जो परम शान्ति मिली, उसकी अनुभूति तो केवल उन्हें ही है।

* * * * *

अज्ञातवास, साधना और सिद्धि

इंटरमीडिएटकी परीक्षा देनेतक बाबा अपने बड़े भाइयोंके पास रहे। परीक्षाफल क्या होगा, इससे बाबाके मनको कोई लगाव नहीं था। परिवारके लोगोंकी प्रसन्नताके लिये परीक्षातक पढ़ना था और परीक्षा देनी थी, वह सब हो चुका। परीक्षा दे चुकनेके बाद बाबाने अपने बड़े भाईसे कहा– आप मुझे हरिद्वारतककी रेल टिकट कटवा कर दे दें।

बड़े भाईने बड़े भारी मनसे टिकट कटवा दी। टिकट ले लेनेके बाद बाबाने अपने बड़े भाइयोंके श्रीचरणोंमें भावपूर्ण हृदयसे प्रणाम किया और सबसे विदाई ली। साश्रु भाइयोंने बड़े भारी मनसे विदाई दी। इसके बाद बाबा कहाँ गये, इसका बड़े भाइयोंको कुछ पता नहीं।

हरिद्वार गये या नहीं गये, यह भी निश्चयात्मक रूपसे नहीं कहा जा सकता। यहींसे बाबाका अज्ञातवास आरम्भ होता है। लक्ष्यकी सिद्धि हेतु बाबाके मनमें बड़ी त्वरा थी। त्वरा इतनी अधिक थी कि वे अपने सम्बन्धमें कुछ समयतक किसीको तनिक भी जानकारी नहीं देना चाहते थे। बाबाका हृदय नितान्त एकान्तके लिये ललक रहा था। बाबाने अपने भाइयोंको वचन दे रखा था कि समय-समयपर मेरे बारेमें आप लोगोंको सूचना मिलती रहेगी, पर इस वचनके पालनका कार्य होगा भविष्यमें। अभी तो सूचना देना तनिक भी अभीष्ट नहीं था। बाबाकी तत्परता और सोद्देश्यता ऐसी थी मानो वे 'कार्यं वा साधयामि, देहं वा पातयामि' के लिये कृत-संकल्प थे। गाँवपर किसी प्रकारकी सूचना देना अथवा घरवालोंसे अपना कुछ भी सम्बन्ध रखना, इसका अर्थ था साधनाके क्रममें व्यवधानको आमन्त्रण देना। अगले एक-दो मास बाबाके सर्वथा एकान्त-परायणताके और घोर साधन-संलग्नताके रहे।

अज्ञातवास करते हुए साधनाके आसनपर बैठनेके लिये परमोत्सुक बाबाका मानसिक-बौद्धिक धरातल कैसा था, उसकी किंचित् झलक आवश्यक है। श्रीमद्भगवद्गीता बचपनसे ही बाबाका प्रिय ग्रन्थ रहा है। बाबा जब सात वर्षके थे, तभीसे श्रीमद्भगवद्गीताके निम्नलिखित श्लोकके अनुसार उनकी साधनाका शुभारम्भ हो गया था।

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥

(श्रीगीता– ७/७)

(हे धनंजय! मेरे अतिरिक्त किंचित् मात्र भी दूसरी वस्तु नहीं है। यह संपूर्ण जगत सूत्रमें सूत्रके मणियोंके सदृश मेरेमें गुँथा हुआ है।)

इस श्लोकके अर्थके अनुसार भावना करते हुए बाबा स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी, स्थावर-जंगम, जड़-चेतन सभीमें भगवद्भावका प्रयास किया करते थे। जेलके बन्दी जीवनमें ग्रन्थावलोकनके लिये पर्याप्त समय मिलता था और उस समय श्रीमद्भगवद्गीताके साथ अन्य धार्मिक पुस्तकोंका भी पठन-पाठन होता था। राजनैतिक बन्दियोंमें जब विचार-गोष्ठियाँ हुआ करती थीं, तब बाबा आध्यात्मिक विषयोंपर भाषण दिया करते थे। जेलसे बाहर आनेके बाद कलकत्तेके विद्यार्थीजीवनमें

आध्यात्मिक ग्रन्थोंका स्वाध्याय बहुत अधिक होने लग गया। संन्यास ले चुकनेके बाद बाबा छः मासतक कलकत्तेमें अपने बड़े भाइयोंके पास रहे। यह अवधि अति गम्भीर अध्ययनमें व्यतीत हुई।

बाबाका हिन्दी, बंगला, संस्कृत तथा अँगरेजी भाषाओंपर समान अधिकार था, इससे उन्हें अनेक ग्रन्थोंके अवलोकन-अध्ययनका भरपूर अवसर मिला। हिन्दी मातृभाषा थी ही, गयाके विद्यार्थी जीवनमें बंगला एवं अँगरेजीका तथा कलकत्तेके विद्यार्थी जीवनमें संस्कृतका परिमार्जित ज्ञान बाबाको हो गया था। गया जिला-स्कूलमें पढ़ते समय बाबा स्कूलके हेडमास्टर श्रीविजयकृष्णजी सेनके घरपर ही एक पारिवारिक सदस्यके रूपमें रहते थे। श्रीसेन महाशयके बंगाली परिवारके मध्य रहनेसे बाबाको बंगला भाषाका अभ्यास सहज ही हो गया। गयाके स्कूली जीवनमें बाबाका अँगरेजी भाषापर इतना असाधारण अधिकार हो गया था कि बाबाके अँगरेजी भाषणको सुनकर गया जिलाका अँगरेज कलक्टर भी आश्चर्य करता था। बाबाने संस्कृतका अध्ययन कलकत्तेमें रहते समय अपने बड़े भाईसे किया। ब्राह्मण कुल एवं पुरोहिती वृत्तिके कारण परिवारमें संस्कृतका वातावरण था ही, फिर एक ओर बड़े भाईका कुशल अध्यापन और दूसरी ओर बाबाकी प्रखर ग्राहकता, इससे बाबा शीघ्र ही संस्कृत भाषामें निष्णात हो गये। इस प्रकार इन चार भाषाओंका विशद ज्ञान बाबाके लिये आध्यात्मिक-धार्मिक-दार्शनिक ग्रन्थोंके गम्भीर अध्ययन करनेमें बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ।

बाबाने श्रीमद्भगवद्गीताकी अनेक टीकाओं-व्याख्याओंका पठन-मनन-चिन्तन किया, किन्तु उनकी ज्ञान-सम्पन्न-बौद्धिकता तथा प्रतिभा-सम्पन्न-तार्किकताको प्रभावित एवं आकर्षित कर सका शांकर भाष्य ही। श्रीमद्भगवद्- गीताके शांकर भाष्यका अध्ययन करते-करते बाबा शांकर मतावलम्बी हो गये। भगवान श्रीआदिशंकराचार्यजीने अपने अद्वैत तत्त्वका प्रतिपादन करनेके लिये श्रीमद्भगवद्गीताके अतिरिक्त ब्रह्मसूत्र तथा मुख्य उपनिषदोंके भी भाष्य लिखे हैं। इन भाष्योंके अध्ययनका परिणाम यह हुआ कि बाबाकी निष्ठा वेदान्त-दर्शनके प्रति दृढ़ हो गयी। भारतके छः आस्तिक दर्शनोंमेंसे एक वेदान्त दर्शन भी है। वेदान्त दर्शनके मर्मतक पहुँचनेके लिये बाबाने छः आस्तिक

दर्शनोंका विस्तृत रूपमें अध्ययन किया। वस्तुतः संन्यासोपरान्त छः मासका विद्यार्थी जीवन विशेष अध्ययनका काल रहा और इस अवधिमें श्रीमद्भगवद्गीता तथा उपनिषदोंके अतिरिक्त शांकर साहित्य, आध्यात्मिक ग्रन्थ तथा हिन्दू दर्शनोंका बाबाने विशद अध्ययन किया। अध्ययन जितना अधिक गहन होता गया, बाबाकी निष्ठा अद्वैत तत्त्वके प्रति उतनी ही अधिक गहरी होती चली गयी।

इसी निष्ठाको लेकर बाबाने अद्वैत तत्त्वकी साधनाके लिये नितान्त ऐकान्तिक जीवन अंगीकार किया। ऐसा लगता है कि पूर्व जन्ममें साधना लगभग पूर्ण हो चुकी थी। एक झीना-सा आवरण रह गया था। साधनाके आसनपर बैठते ही वह आवरण दूर हो गया। वेदान्त दर्शनका मूलाधार सिद्धान्त है 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म। नेह नानास्ति किञ्चन।' और इस तत्त्वके दिव्य सच्चिदानन्दमय प्रकाशसे बाबाके भीतर-बाहरका सारा जीवन आलोकित हो उठा।

शांकर मतके अनुसार परब्रह्म एक, अद्वैत, निर्विशेष और निर्गुण है। ब्रह्म सत्य है एवं जगत मिथ्या है। जीव ब्रह्मके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। साधन-चतुष्टयके द्वारा जब चित्तकी शुद्धि होती है, तब ब्रह्म-ज्ञान होता है। ब्रह्मात्म-बोध ही मुक्ति है। मुक्तात्मा ही व्यावहारिक क्षेत्रमें सभी प्राणियोंके प्रति ब्रह्म-दृष्टि रख पाता है। इस ब्रह्म-दृष्टिकी सिद्धिके लिये बाबाको साधनाके आसनपर लम्बी अवधिके लिये बैठना नहीं पड़ा। साधनामें संलग्न होनेके कुछ दिन बाद ही बाबाके हृदयमें ब्रह्म-तत्त्व उद्भासित हो उठा। स्वरूपावबोध होते ही बाबा ब्रह्म-भावमें प्रतिष्ठित हो गये। अखण्ड ब्रह्मानुभूतिमें निमग्न बाबाके लिये जगतका अस्तित्व समाप्त हो गया। बाबाके व्यक्तित्वमें अब रह गयी थी 'अहं ब्रह्मास्मि'की परमानन्दमयी अनुभूति। अद्वैत तत्त्वकी साधना बाबाने बहुत थोड़े समयके लिये की। एक ओर साधनाकी अत्यल्प अवधि और दूसरी ओर साधनामें महान सफलता, यह तथ्य ही संकेत करता है कि पूर्व जन्मकी साधनाकी पूर्णतामें कहने भरके लिये किञ्चित् न्यूनता रह गयी थी और उसे पूर्णता प्रदान करनेके लिये वर्तमान साधना एक निमित्त मात्र थी। इतना ही नहीं, इस छोटी आयुमें इतना विशद अध्ययन और ऐसी महान सिद्धि, इससे भी एक संकेत मिलता है कि बाबाके जीवनसे कोई विशेष महान कार्य होनेवाला है।

इन दिनों बाबाके परमानन्दकी सीमा नहीं थी। श्रीमद्भगवद्गीतामें आया है–

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।।

(श्रीगीता– १३/१७)

(वह परब्रह्म ज्योतियोंका भी ज्योति एवं मायासे अत्यन्त परे कहा जाता है। वह बोधस्वरूप, जाननेके योग्य एवं तत्त्वज्ञानसे प्राप्त करने योग्य है और सबके हृदयमें विशेष रूपसे स्थित है।)

योऽन्तः सुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति।।

(श्रीगीता– ५/२४)

(जो पुरुष आत्मामें ही सुखी है, आत्मामें ही रमण करता है तथा जो आत्मामें ही ज्ञानवान है, वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्माके साथ एकीभावको प्राप्त, 'मैं ही ब्रह्म हूँ' इस प्रकार अनुभव करनेवाला ज्ञानयोगी शान्त ब्रह्मको प्राप्त होता है।)

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते।।

(श्रीगीता– ५/२१)

(बाहरके विषयोंमें आसक्तिरहित अन्तःकरणवाला साधक आत्मामें स्थित जो ध्यानजनित सात्त्विक आनन्द है, उसको प्राप्त होता है, तदनन्तर वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्मके ध्यानरूप योगमें अभिन्न भावसे स्थित पुरुष अक्षय आनन्दका अनुभव करता है।)

शास्त्रोंकी मान्यताके अनुसार, 'मैं ब्रह्म हूँ' इस प्रकारके अनुभवसे सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें एकीभावसे स्थित प्रसन्न चित्तवाला संत सम्पूर्ण जागतिक द्वन्द्वोंसे अतीत हो जाता है। उसे जगत स्वप्नवत् प्रतीत होता है। उसके अन्तःकरणमें अहंता-ममता, राग-द्वेष, हर्ष-शोक आदि विकार नहीं रह जाते। बाबाके जीवनको देखकर यही कहना चाहिये कि ये शास्त्रीय मान्यताएँ पूर्णतः यथार्थ ही हैं।

जिस प्रकार अनुकूल परिस्थितिमें न्यूनताका बोध नहीं हो पाता, उसी प्रकार प्रतिकूल परिस्थितिमें भी न्यूनताका बोध नहीं हो, तभी उस

सिद्ध स्थितिको ब्राह्मी स्थिति कहना चाहिये, अतः वास्तविकताका परिज्ञान प्राप्त करनेके लिये बाबाने प्रतिकूल परिस्थितिका स्वेच्छासे वरण किया। बाबाके मनमें आया कि कुष्ठ रोगसे ग्रस्त कोढ़ी समाजमें अत्यधिक उपेक्षणीय होते हैं। इसमें भी जिन्हें गलित कुष्ठ होता है, उनसे कोई सम्पर्क रखना नहीं चाहता। एक प्रकारसे वे घृणाके पात्र बन जाते हैं। लोगों द्वारा तिरस्कृत इन उपेक्षणीय, अस्पृश्य कोढ़ियोंके बीच रहनेपर भी हृदयस्थ परमानन्दमें न्यूनता न आये और जगतमें सभी प्राणियोंके प्रति दृष्टि सम रहे, तब साधनामें प्राप्त सफलताको विश्वसनीय कहा जा सकता है।

आत्म-परीक्षणके लिये बाबाने कोढ़ियोंके मध्य बैठनेका निश्चय किया और बैठना आरम्भ किया कलकत्तेके कोढ़ियोंके साथ। बाबा हरिद्वारसे वापस कलकत्ता कब आये, इसके बारेमें निश्चयात्मक रूपसे कुछ कह सकना कठिन है। यही मानना चाहिये कि साधनामें सिद्धिकी उपलब्धिके उपरान्त बाबा कलकत्ते चले आये अपने प्रदत्त वचनका पालन करनेके लिये। बाबाने घरवालोंको वचन दिया था कि समय-समयपर मेरेसे सम्बान्धित सूचना आप लोगोंको मिलती रहेगी।

समाजकी दयापर निर्भर रहनेवाले न जाने कितने कोढ़ी कलकत्तेमें गंगाजीको जानेवाले मार्गपर पड़े रहते हैं। गंगास्नानके लिये जानेवाले धर्मात्मा एक-दो पैसा फुटपाथपर पड़े हुए कोढ़ियोंके सामने डाल देते हैं, वही उनके जीवनका आधार होता है। बाबा उन्हीं कोढ़ियोंके बीच बैठने लगे। बाबा प्रातःकाल आकर उनके पास बैठ जाते और संध्याके समय उठते। धर्मात्मा लोग जैसे अन्य कोढ़ियोंके सामने पैसा डालते, वैसे ही बाबाके सामने भी। बाबाको तो द्रव्य-स्पर्श करना नहीं था, अतः बाबा जब संध्याकालमें उठते तो पासवाले कोढ़ीको पैसा उठा लेनेके लिये कह देते। इससे वह कोढ़ी बड़ा प्रसन्न होता। प्रत्येक दिन बाबा ऐसा ही करते। इससे अब हर कोढ़ी यही चाहता कि बाबा मेरे पास बैठें, जिससे इनको मिला हुआ सारा पैसा मुझे मिल जाये, पर बाबा बैठते उस गलित कोढ़ीके पास, जिसकी शारीरिक दशा बड़ी शोचनीय होती।

कोढ़ियोंके मध्य बाबा एक-दो सप्ताह बैठे होंगे और बैठनेका प्रयोजन था आत्म-परीक्षण करना कि मेरे अन्दर विषमताका अभाव हुआ अथवा नहीं। सुख-दुःख, मम-पर, प्रिय-अप्रिय, लाभ-हानि यही तो

द्वन्द्वात्मक जगतका स्वरूप है और यथार्थ ब्रह्म-वेत्ता संन्यासी वही है, जिसकी दृष्टि दोनों सीमाओंके प्रति सम है और जिसका मन सभी परिस्थितियोंमें शान्त एवं प्रसन्न है। कोढ़ियोंके बीच रहनेवाले बाबाके ब्रह्मानन्दका सागर वहाँ भी हिलोरें लेता रहता था।

* * * * *

गीता-प्रवचन एवं हठयोग

अब वचन-पालनके रूपमें अपने बड़े भाइयोंको स्वयंसे सम्बन्धित सूचना देनेकी बात बाबाके मनमें स्फुरित हुई और संयोगकी बात, बाबाके ही स्वजन श्रीभवानीशंकरजी मिश्रकी बाबासे भेंट हो गयी। श्रीभवानीशंकरजीमें देशसेवाका भाव बड़ा प्रबल था और क्रान्तिकारियोंसे उनका सम्पर्क था। श्रीभवानीशंकरजी अपने क्रान्तिकारी मित्रोंके परिवारोंकी दयनीय स्थितिसे बड़े व्यथित थे। कोई क्रान्तिकारी फाँसीके तख्तेपर चढ़ा दिया गया था, कोई पिस्तौलके निशानेका शिकार हो चुका था, कोई जेलकी चार दीवारके भीतर यातनाएँ भोग रहा था, कोई गिरफ्तारीके वारंटके कारण फरार था, कोई सरकारी कोपका भाजन होनेके कारण कुछ कमा नहीं पा रहा था और कोई देशसेवाके उत्साहमें घर-गृहस्थीसे सम्बन्ध विच्छिन्न करके अपनी योजनानुसार सक्रिय था। रोटी-कपड़ेकी गम्भीर समस्याके कारण इन लोगोंके परिवारोंकी दशा बड़ी शोचनीय थी। इन सारी विपन्नताओंका नग्न चित्र श्रीभवानीशंकरजीने बाबाके सामने रखा। कुछ तो उन्होंने बतलाया और कुछकी जानकारी बाबाको स्वयं थी। बाबाका करुणार्द्र हृदय सुन-सुन करके द्रवित हो उठा।

अब प्रश्न यह था कि इन संत्रस्त परिवारोंकी सहायता किस प्रकार की जाये। इन्हें सहायता प्रदान करनेके लिये धन कहाँसे मिले? श्रीभवानीशंकरजीने बाबाको सुझाव दिया— देखिये स्वामीजी! भगवानने आपको प्रतिभा और योग्यता दे रखी है। आपने श्रीगीताजीका गहन अध्ययन किया है। आपका शास्त्र-ज्ञान विशद है, आपके प्रवचनकी शैली सुन्दर है, विषयका प्रतिपादन रोचक होता है और आपके कण्ठका स्वर भी मधुर है। यदि आप ग्राम-ग्राम भ्रमण करते हुए श्रीगीताजीपर कथा कहें तो बात सरलतासे बन सकती है। कथामें जो चढ़ावा आयेगा, उससे

विपत्ति-ग्रस्त परिवारोंकी सहायता की जा सकती है।

अध्यात्म-चर्चाको बेचना और कथा कह करके द्रव्य संग्रह करना, यह कल्पना भी बाबाके लिये असह्य थी। बाबाने इस कार्यके लिये स्पष्ट रूपसे मना कर दिया। बाबा राजी नहीं हुए। वे सुझावके रूपमें बार-बार अनुरोध करते रहे। एकबार बाबाका करुणार्द्र हृदय विगलित हो उठा और उनका आग्रह देखकर बाबाने अपनी सहमति प्रदान कर दी, परंतु इसीके साथ बाबाने यह भी कहा– पैसेका स्पर्श तो मैं करूँगा ही नहीं।

श्रीभवानीशंकरजीने कहा– आप पैसेका स्पर्श कभी न करें। चढ़ावेको मैं इकट्ठा कर लिया करूँगा।

श्रीभवानीशंकरजीके साथ ग्राम-ग्राम यात्रा करते हुए बाबाने श्रीमद्भगवद्गीतापर कथा कहनी आरम्भ कर दी। कई ग्रामोंमें बाबाका श्रीमद्भगवद्गीतापर प्रवचन हुआ। बाबा तो ग्रामके बाहर किसी मन्दिर अथवा एकान्त-शान्त स्थानपर ठहरा करते थे, केवल कथा कहनेके लिये ग्रामके भीतर जाया करते थे। बाबाकी भिक्षाके लिये श्रीभवानीशंकरजी ग्रामसे कच्चा अन्न माँगकर ले आते और जहाँ ठहरे होते, वहीं रन्धन करते। बाबाको भिक्षा करा करके वे स्वयं भोजन करते।

सबसे पहली कथा हुई पहाड़पुर ग्राममें, जो कलकत्ता जानेवाले मार्गमें बंगाल-बिहारकी सीमापर है। बाबाकी वक्तृत्व-शक्ति अद्भुत थी ही। कथामें लोगोंकी बड़ी भीड़ होती थी। श्रोताओंके विशाल समूहको देखकर श्रीभवानीशंकरजी बड़े प्रसन्न हुए कि चढ़ावेके रूपमें पुष्कल धन गा। बाबाके प्रवचनसे प्रभावित होकर ग्रामवाले चढ़ावेकी बात भी लगे थे, पर बाबाने अपने प्रवचनमें कहा– मैं न तो पैसेका स्पर्श करता हूँ और न इस चढ़ावेसे मेरा कोई सम्बन्ध है। कथाके अन्तमें जो चढ़ावा आयेगा, उसे मेरे साथ रहनेवाले पण्डित श्रीभवानीशंकरजी मिश्र ले लेंगे। मैं इतना अवश्य कह सकता हूँ कि चढ़ावेसे इकट्ठे होनेवाले धनका उपयोग ये निश्चय ही श्रेष्ठ सेवा-कार्यमें करेंगे।

कथासे प्रभावित श्रोतागणमें चढ़ावा देनेका उत्साह तो बहुत था, परंतु बाबाकी स्पष्टवादितासे वह उत्साह मन्द पड़ गया। फिर चढ़ावा बहुत कम रूपमें होता। चढ़ावा देखकर श्रीभवानीशंकरजीको बड़ी निराशा हुई। एक ग्राममें कथा केवल कुछ दिन होती। फिर बाबा और

श्रीभवानीशंकरजी किसी अन्य ग्रामकी ओर बढ़ जाते। इस प्रकार कथाका क्रम चलता रहा। यह कथा मुख्यतः उन ग्रामोंमें हुई, जो पटनासे कलकत्तातक श्रीगंगाजीके तटवर्ती थे। श्रीमद्भगवद्-गीतापर जो प्रवचन स्थान-स्थानपर बाबा द्वारा हुए, उससे श्रीभवानीशंकरजीके उद्देश्यकी सिद्धि नहीं हो पायी, परंतु एक लाभ उन्हें हुआ। श्रीगीताजीकी सुन्दर कथा और बाबाकी आदर्श जीवनचर्यासे श्रीभवानीशंकरजीकी जीवन-धारामें परिवर्तन अवश्य आया।

बाबा ग्राम-ग्राम भ्रमण करते हुए प्रवचन दिया करते थे। एक घटनासे उनकी ख्याति बहुत बढ़ गयी। एकबार बाबा ग्रामके बाहर एक मन्दिरमें ठहरे हुए थे। रातके समय एक स्त्रीने पैर पकड़ लिये और रो-रो करके कहने लगी— आप मेरे भाईको बचा लीजिये। उसे हैजा हो गया है। आप उसको जीवनका दान दे दीजिये।

संन्यास ग्रहण करनेके बाद बाबाका अति कठोर नियम था नारी-स्पर्शसे सर्वथा दूर रहना। बाबाने पैर छुड़वानेकी बड़ी चेष्टा की, पर उसने छोड़ा ही नहीं। मन्दिरके एक-दो व्यक्तियोंने उसे समझानेका प्रयास किया, पर वह तो सुनती ही नहीं थी। वह तो लगातार रो-रो करके अपने भाईके जीवनकी रक्षाके लिये गुहार कर रही थी। जब उसने पैर नहीं छोड़ा तो बाबाने सोचा कि रौद्र रूप धारण किये बिना बात बनेगी नहीं। बाबाने रोष भरे स्वरमें उससे कहा— आज तू अपने भाईके लिये इतना रो रही है और कल यदि तेरा ही प्राणान्त हो जाये तो?

बाबाकी क्षुब्धता देखकर वह स्त्री पीछे हट गयी। संयोगकी बात, उस स्त्रीकी अगले दिन हैजेसे मृत्यु हो गयी। इससे लोगोंपर बड़ा प्रभाव पड़ा। लोग आपसमें कहने लगे कि स्वामीजी तो भविष्यके गर्भकी बात भी बोल जाते हैं। बाबाने तो सहज ढंगसे एक सनातन दार्शनिक सम्भावनाको कहा था, जिससे वह स्त्री स्वयंको संयमित कर सके, पर यह तो मात्र संयोग था कि वह उक्ति सत्य हो गयी। प्रवचनकी रोचक शैली, पैसा नहीं लेनेके कारण निस्स्पृह वृत्ति, कठोर संन्यासी जीवन आदिके कारण बाबाकी ख्याति तो थी ही, इस भविष्यवाणीकी सत्यतासे बाबाकी प्रसिद्धि बहुत अधिक हो गयी।

जब बाबा स्थान-स्थानपर श्रीमद्भगवद्गीतापर प्रवचन दिया करते

थे, तबकी बात है। एक बार बसमें बैठकर वे जा रहे थे। १८ मीलकी यात्रा तय करनी थी। ड्राइवर अच्छे स्वभावका व्यक्ति था, अतः उसने संन्यासी देखकर बाबाको आगेवाली सीटपर बैठा लिया। बस जब चलनेको हुई तो एक पुलिस अधिकारी आया और अगली सीटपर बाबाके बगलमें बैठ गया। वह जमाना अँगरेजी शासनका था और पुलिसके सिपाही या अफसरका रोब इतना अधिक होता था कि कोई उनके सामने कुछ बोलनेका साहस नहीं कर सकता था। उसी रोबके दबावमें ड्राइवरने पुलिस अधिकारीको भी आगेवाली सीटपर बैठा लिया था।

जब बस चल पड़ी तो वह पुलिस अधिकारी बाबाको कुहनी मारने लगा। संन्यासी होनेके कारण बाबा सब सह रहे थे तथा जहाँतक सम्भव था, वे ड्राइवरकी ओर सरक भी गये थे, जिससे पुलिस अधिकारीको बैठनेके लिये पर्याप्त स्थान मिल जाये। सुविधापूर्वक बैठनेके लिये स्थान मिल जानेके बाद भी वह पुलिस अधिकारी अपने अहंकारमें भला क्यों चुप बैठनेवाला था। वह तो बाबाको रह-रह करके कुहनी मारता रहता था। पिछली सीटपर बैठे हुए यात्रियोंने देखा कि यह तो अनुचित हो रहा है, पर किसीमें विरोध करनेका साहस नहीं था। वह पुलिस अधिकारी बाबाको अधिकाधिक तंग ही करता रहा। बाबा अधीरतापूर्वक प्रतीक्षा करने लगे कि यह यात्रा कब पूर्ण होगी।

आगे चलकर बस एक स्थानपर रुकी। वह पुलिस अधिकारी जलपान करनेके लिये बससे नीचे उतरा। अब संयोगकी बात, बसमें पुनः चढ़कर उस पुलिस अधिकारीने जब फाटक बन्द किया तो फाटकमें उसकी अँगुली दब गयी। दब क्या गयी, एकदम चिथ गयी। चिथते ही उस पुलिस अधिकारीने जोरसे चीख मारी। सहायता करनेके लिये और लोग बढ़ें, इसके पहले ही बाबा चटसे आगे आये और तुरंत फाटक खोलकर उसकी अँगुलीको बाहर निकाला। अँगुलीका हाल बड़ा बुरा था। बाबाने तत्काल अपने गेरुए वस्त्रका छोर फाड़ा और कमण्डलुके जलसे उस छोरको भिगोकर उसकी अँगुलीपर बाँध दिया। फिर बाबाने कहा—अगले ग्राममें डिस्ट्रिक्ट बोर्डकी डिस्पेंसरी है, वहाँ आप ठीकसे पट्टी बँधवा लीजियेगा।

बसके सह-यात्री उस अधिकारीकी करतूतको पहले देख चुके थे और फिर वे आश्चर्य कर रहे थे कि एक ओर तो उस पुलिस अधिकारीका कैसा निन्दनीय आचरण था और दूसरी ओर इस युवक संन्यासीका कैसा साधु व्यवहार रहा। फिर तो उस पुलिस अधिकारीमें भी परिवर्तन आया। बाबाने तो वही किया, जो यति-धर्मसे अनुमोदित था।

अपनी एकान्त-प्रियताके कारण कभी-कभी बाबाको विकट परिस्थितिका भी सामना करना पड़ा। बाबा सदा ही गाँवके बाहर निवास किया करते थे और प्रातःकाल अकेले ही घने जंगलमें शौचके लिये जाया करते थे। ग्रामवासियोंने सावधान करते हुए कहा– जंगलमें भालू-तेंदुए-बाघ आदि हिंसक पशु रहते हैं, अतः अकेले नहीं जाना चाहिये। हमलोग भी जाते हैं तो समुदायमें ढोल पीटते हुए जाया करते हैं।

लोगोंद्वारा अनुरोध किये जानेके बाद भी बाबा अकेले ही वनमें जाया करते थे। जन-सम्पर्क एवं जगच्चर्चा बाबाको रुचिकर नहीं थी। एक बारकी बात, जिस ग्राममें बाबा गये थे, उसके समीपके जंगलमें एक झरना था। वनकी निर्जनता और जलका प्रवाह, यह बाबाको स्वभावतः प्रिय रहा। अपने प्रातः कालीन शौचादि कार्यसे निवृत्त होनेके लिये बाबा वहीं जाया करते थे। बाबा शौचके लिये बैठे ही होंगे कि बाघके शरीरकी तीव्र दुर्गन्ध आने लगी। बाबाको उसी समय अनुमान हो गया कि आस-पास कोई बाघ है। बाबाके मनमें तुरन्त यही आया– बाघ इस शरीरको अपना भोजन बनाना चाहता है तो बना ले। मैं शरीर तो हूँ नहीं। जो भवितव्य है, मैं उसमें व्यवधान क्यों डालूँ? शरीरको रहना हो तो रहे और जाना हो तो जाये। दोनोंके प्रति मेरी दृष्टि सम है।

उस विकट परिस्थितिमें भी 'ब्रह्म सत्य है, जगत मिथ्या है और जीव ब्रह्म है', इस शांकर सिद्धान्तसे बाबाका मन एकाकार हो गया। यह अद्वैत तत्त्व बाबाके चित्त रूपी स्वच्छ दर्पणमें पूर्णतः प्रतिफलित हो उठा। इधर बाबा अपने तत्त्व-चिन्तनमें तल्लीन हो गये और उधर वह तीव्र दुर्गन्ध क्रमशः कम होने लग गयी। क्रमशः क्षीण होती हुई दुर्गन्धसे बाबाने अनुमान लगा लिया कि बाघ चला जा चुका है। बाघसे बाबाका आमनासामना नहीं हुआ, किन्तु शरीरके अस्तित्वकी दृष्टिसे एक बार भयावह परिस्थिति बाबाके सामने उपस्थित हो ही गयी थी। वास्तविक

आत्म-परीक्षणके सच्चे अवसर होते हैं जीवनके विषम क्षण ही। वस्तुतः प्रतिकूलताके मध्य ही सही-सही परिज्ञान हो पाता है कि जीवनका संस्कार और उसकी संरचना स्वीकृत सिद्धान्तोंके अनुसार हुई है अथवा नहीं। इस अति विकट परिस्थितिमें भी बाबा अपनी आत्म-स्थितिके स्वरूपसे अच्युत थे।

ग्राम-ग्राम भ्रमण करते समय बाबा ब्रह्मचिन्तन एवं ग्रन्थावलोकन तो करते ही थे, इसीके साथ उनका योगाभ्यास भी चलता रहता था। हठयोगकी साधना करते समय एक बार ऐसी चूक हो गयी कि बाबाके प्राणोंपर बन गयी। स्थिति ऐसी गम्भीर हो गयी मानो कुछ ही क्षणोंमें शरीरान्त हो जायेगा। किसीको कुछ भी सूझ नहीं रहा था कि क्या उपचार किया जाये। यह कष्ट किसी व्याधिका परिणाम तो था नहीं। थोड़ी देर बाद वह कष्ट स्वतः ही कम हो गया। वह कम हुआ था, समाप्त नहीं।

बाबाके साथ श्रीभवानीशंकरजी रहते ही थे। उन्होंने बाबासे बिना पूछे ही चुपचाप बाबाके बड़े भाई श्रीतारादत्तजीको पत्र द्वारा सूचना दे दी। घरसे श्रीतारादत्तजी बाबाके पास पहुँच गये और उन्होंने अपने गाँव चलनेके लिये आग्रह किया। गाँवपर जानेके लिये बाबा तनिक भी राजी नहीं हुए। बाबाने कहा— यदि जाना ही है तो मैं कलकत्ते जाना चाहूँगा।

श्रीतारादत्तजीने रेलसे यात्रा करनेके लिये कलकत्तेकी टिकट कटवा दी। बाबा पैसेंजर ट्रेनसे कलकत्ते गये। श्रीतारादत्तजीने कलकत्ते सूचना तार द्वारा भिजवा दी थी, अतः कई स्वजन स्टेशनपर आ गये थे।

उन दिनों कलकत्तेमें सुप्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक थे श्रीब्रह्मस्वरूपजी श्रोत्रिय। बाबा उनके चिकित्सा-केन्द्रपर गये। भवनके द्वारपर दरबानने बाबाका बड़ा अपमान किया यह समझकर कि यह भिखारी संन्यासी मालिकको व्यर्थ ही तंग करनेके लिये आया है। जब उससे यह कहा गया कि एक रोगीके रूपमें चिकित्सा करवानेके लिये आये हैं, तब उसने प्रवेश करने दिया। बाबा भवनके अन्दर गये। एक संन्यासीको आया हुआ देखकर श्रीब्रह्मस्वरूपजी तुरंत अपनी कुर्सीपरसे उठ खड़े हुए और हाथ जोड़कर विनम्र भावसे उन्होंने बाबाको प्रणाम किया। बाबाने उनको बतलाया— हठयोगकी एक क्रियामें किंचित् चूक हो

जानेसे पीठकी एक नाड़ीमें वात-प्रवेश हो गया है। यदि इसका उपचार सम्भव हो तो आप उचित परामर्श दें।

श्रीब्रह्मस्वरूपजीने पूर्ण आश्वासन दिया तथा उन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा-विधिसे उपचार आरम्भ कर दिया। उन्होंने न तो चिकित्सा-शुल्क लिया और न उपचार-व्यय। उन्होंने बड़े सम्मानपूर्वक बाबाकी चिकित्सा की। जितने विनम्र और उदार श्रीब्रह्मस्वरूपजी थे, वैसी ही सेवापरायणा और साधुहृदया उनकी धर्मपत्नी थी। उपवासके उपरान्त रसाहारकी सारी व्यवस्था उनकी धर्मपत्नी ही करती थी। पहले ही दिन उसने कर-बद्ध होकर बाबासे प्रार्थना की थी— स्वामीजी! घरपर भिक्षा किये बिना जाने नहीं दूँगी।

बाबाकी प्राकृतिक चिकित्सा लगभग १५-१६ दिनोंतक चली। इससे बाबाको लाभ हुआ। चिकित्साका क्रम पूर्ण हो जानेके बाद भी बाबा उनके पास आते रहे। बाबा प्रतिदिन जाते तथा प्राकृतिक चिकित्साकी प्रकियाका व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करते रहते। बाबाके अद्‌भुत पाण्डित्य तथा सच्चे जीवनसे श्रीब्रह्मस्वरूपजी भी कम प्रभावित नहीं थे। परस्परका यह स्नेह-सम्बन्ध भविष्यमें भी बना रहा।

इन्हीं दिनों बाबाका एक ऐसे साधुसे सम्पर्क हुआ, जो हमेशा नंगा रहता था, प्रायः पागलकी-सी चेष्टा करता। हाथ इस ढंगसे उठाता, मानो किसीको मार देगा, पर कभी किसीको मारा नहीं। वे गंदी नालीकी ओर अपना मुँह ले जाते तथा ऐसे लपकते, मानो कुछ खानेके लिये लपक रहे हों, पर कभी कुछ लेते नहीं थे।

बाबा उन्हें संन्यास लेनेके पूर्व भी ऐसे ही देखते और संन्यास लेनेके बाद भी ऐसे ही देखा। एक दिन बाबा उनके पीछे हो लिये। उन्होंने उसी प्रकार बाबाको मारनेके लिये हाथ उठाया। इस पर भी बाबा भय-शून्य खड़े रहे। उनकी दृष्टि नीचे थी। कुछ देर बाद उन्होंने अपनी नजर उठाकर, दृष्टिके माध्यमसे अपने अन्तरका सारा प्यार उड़ेलते हुए स्नेहभरे स्वरमें दो ही शब्द कहे कि 'अब जावो'। बाबा विचारने लगे— कहा नहीं जा सकता कि किस रूपमें कौन है।

* * * * *

पुलिस विभाग के गुप्तचर द्वारा नजर

संन्यास ले चुकनेके बाद भी पुलिसने बाबाका पीछा नहीं छोड़ा। कलकत्तेके पुलिस विभागने पहचान लिया और पता लगा लिया कि संन्यासी वेषमें यह युवक क्रान्तिकारी चक्रधर मिश्र ही है। उनको सन्देह था कि संन्यासी जीवन स्वीकार करना भी इनके षड्यन्त्रका एक अंग हो सकता है। फिर पुलिसका एक गुप्तचर ही संन्यासी वेषमें बाबाके पीछे लगा रहा। उन दिनों बाबा प्रायः संस्कृत भाषामें ही बोला करते थे। बाबाको क्या पता कि वह एक गुप्तचर है। वह संन्यासी वेषधारी बाबाके ही साथ रहता। बाबा उस संन्यासी गुप्तचरको अपने साथ-साथ भिक्षा कराने लगे। वह कई दिनोंतक बाबाके साथ रहा। उसकी आध्यात्मिक उन्नति नहीं देखकर बाबाको बड़ा विस्मय होता था, अतः बाबाने उससे कहा– महाराज! मेरे साथ रहनेसे आपकी भिक्षाकी व्यवस्था तो हो जाती है, पर आपकी पारमार्थिक उन्नतिके लक्षण दिखलायी नहीं देते। मेरे जैसे अति साधारण व्यक्तिके साथ रह करके आप अपना समय क्यों नष्ट करते हैं? आपको किसी श्रेष्ठ संतका आश्रय ग्रहण करना चाहिये।

उस संन्यासी गुप्तचरने कुछ उत्तर नहीं दिया। एक दिन बाबाने उनको किसी दूसरे स्थानपर सादे नागरिक वेषमें देखा। बाबाने उनको पहचान लिया और बँगला भाषामें पूछा– महाशय! आज यह नागरिक वेष कैसे धारण कर लिया?

वह संन्यासी गुप्तचर बाबाद्वारा प्रश्न किये जानेपर झेंप गया। उसने जान लिया कि आज मेरी बात खुल गयी और बाबाने भी जान लिया कि यह तो संन्यासी वेषमें गुप्तचर था। फिर वे कभी बाबाके पास नहीं आये। इसके बाद पुलिसने भी बाबाका पीछा करना छोड़ दिया। बाबाकी बातचीतको, उनसे मिलनेवालोंको और उनके कार्यको लगातार देखते रहनेके बाद भी पुलिस विभागको आशंका करनेके लिये कोई छिद्र नहीं मिला। सतत निरीक्षण करते-करते पुलिसको यह विश्वासको हो गया कि बाबाका संन्यासी जीवन किसी षड्यन्त्रका अंग नहीं, अपितु विशुद्ध आध्यात्मिक जीवन है।

* * * * *

स्वामी श्रीरामसुखदासजी से निकटता

बाबा नियमतः प्रतिदिन गंगास्नानके लिये जाया करते थे। साधक, संत अथवा सिद्ध, सभीके लिये भगवती गंगा नित्य वन्दनीय हैं। भगवती गंगाके शान्त प्रवाहका पावन दर्शन, निर्मल नीरका सभक्ति सेवन एवं एकान्त कूलपर स्थिर आसन साधकों-संतों-सिद्धोंके लिये सदैव ही उपयोगी एवं उद्दीपक रहा है। गंगा-तीरके पुनीत वातावरणमें ब्रह्म-चिन्तन, भगवदर्चन, साधन-भजन आदि सहज सम्भव बन जाते हैं। जब बाबा गंगा-स्नानके लिये जाते थे तो किसी अचिन्त्य विधानसे सदा ही ऐसे श्रेष्ठ संत अथवा साधु, विचारक अथवा सात्त्विक पण्डित अथवा विरक्त संन्यासी मिल जाया करते थे, जिनसे पर्याप्त समयतक सच्चर्चा हुआ करती थी। चर्चाके विषय मुख्यतः रहते थे श्रीमद्भगवद्गीताके प्रधान प्रतिपाद्य सिद्धान्त, त्रिगुणातीत संतजीवन, सिद्ध महापुरुषकी जीवनचर्या, श्रीशंकराचार्यजीका अद्वैत तत्त्व।

इसी अवधिमें बाबाको गोविन्द भवनका परिचय मिला, जिसके द्वारा गोरखपुरके गीताप्रेसका और गीताप्रेससे प्रकाशित होनेवाली धार्मिक पुस्तकोंका एवं 'कल्याण' पत्रिकाका संचालन और नियन्त्रण होता था। उन दिनों कलकत्तेमें गोविन्द भवन अध्यात्मचर्चाका एक प्रमुख केन्द्र था। गोविन्द भवनमें सत्संगकी व्यवस्था सदा ही रहती थी, पर रविवारको विशेष रूपसे। पूज्य स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजके प्रवचनको सुननेके लिये न जाने कहाँ-कहाँसे श्रोतागण गोविन्द भवन आया करते थे। श्रीस्वामीजी महाराजका प्रवचन मुख्यतः श्रीमद्भगवद्गीतापर होता था। श्रीगीताजी बाबाका अत्यन्त प्रिय ग्रन्थ रहा, अतः श्रीगीताजीपर श्रीस्वामीजीके विचारोंको सुननेके लिये बाबा भी गोविन्द भवनमें श्रोताओंके मध्य पीछे बैठ गये। मंचपर बैठे हुए श्रीस्वामीजी महाराजकी दृष्टि बाबापर पड़ी। संन्यासी वेषको उचित सम्मान तथा संन्यासीको बैठनेके लिये उचित स्थान देना चाहिये, इसी भावनासे श्रीस्वामीजीने बाबाको आग्रहपूर्वक आगे बैठाया। यह प्रथम परिचय था, जो शीघ्र ही घनिष्ठ रूपमें परिणत हो गया।

परस्परमें भगवत्तत्त्वपर विचार-विनिमय हुआ करता था। परस्परके विचारोंका आदान-प्रदान संस्कृत भाषामें ही होता। बाबाकी प्रतिभासे स्वामीजी प्रभावित हुए। स्वामीजीने पूज्य श्रीसेठजी (पूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दका) की 'तत्त्व-चिन्तामणि' नामक पुस्तकके प्रथम दो भाग पढ़नेके लिये बाबाको दिये। बाबाने पुस्तकोंको पढ़कर शीघ्र ही वापस कर दिया।

एक दिन स्वामीजी श्रीसेठजीके कुछ पत्र एक साधक श्रीचम्पालालजी बिन्नानीको सुना रहे थे। बाबा भी वहीं बैठे-बैठे पत्रको सुन रहे थे। स्वामीजीने कई पत्र पढ़कर सुनाये। कई पत्रोंके बीच इस प्रकारका भी पत्र आया, जिसे सुनकर बाबाको यह लगा कि ऐसा पत्र वही लिख सकता है, जिसे 'स्वरूपानुभव' हो गया हो। स्वरूपानुभूतिके बिना वैसा पत्र लिखा ही नहीं जा सकता। बाबाने स्वामीजीसे पूछा– यह पत्र किसने लिखा है?

स्वामीजीने कहा– यह श्रीसेठजीका पत्र है।

बाबा– श्रीसेठजी कहाँ रहते हैं?

स्वामीजी– वे तो बाँकुड़ा रहते हैं।

बाबा– यह बाँकुड़ा कहाँ है?

स्वामीजी– बंगालका ही एक नगर है। यहींपर श्रीसेठजीका सारा व्यापार है।

बाबा– मैं उनसे मिलना चाहता हूँ।

स्वामीजी– आपके बाँकुड़ा जानेकी सारी व्यवस्था करवा दी जायेगी। आप कब जाना चाहते हैं?

बाबा– मैं तो आज ही जाना चाहता हूँ। जब मिलनेकी इच्छा जाग गयी, तब फिर विलम्ब क्यों किया जाय?

बाबाके इस उल्लास भरे उत्तरको सुनकर स्वामीजीके नयनोंमें उत्फुल्लता छा गयी। स्वामीजीको विश्वास था कि इन सुयोग्य युवक संन्यासी श्रीचक्रधरजीसे मिलकर श्रीसेठजीको बड़ी प्रसन्नता होगी। बाबाको बाँकुड़ा भेजनेकी दृष्टिसे स्वामीजीका चिन्तन सक्रिय हो उठा।

* * * * *

श्रीसेठजी से बाँकुड़ा में मिलन एवं विचार-विनिमय

स्वामीजी श्रीसेठजीके परम निज जन रहे हैं। स्वामीजीको यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि बाबा जैसे प्रतिभा-सम्पन्न युवक संन्यासीके मनमें श्रीसेठजीके प्रति आदरका भाव जाग उठा है। स्वामीजीने रेलकी टिकट कटवा कर दे दी और बाँकुड़ा तार करवा दिया कि एक युवक संन्यासी आपके दर्शनार्थ आ रहे हैं, जो बड़े योग्य हैं। तार यथा-समय बाँकुड़ा पहुँच गया। श्रीसेठजीके आदेशानुसार श्रीघनश्यामदासजी जालान, जो गीताप्रसके आजीवन प्रकाशक और मुद्रक रहे हैं, वे ही द्वारपर युवक संन्यासीके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। बाँकुड़ा स्टेशनसे उतरकर बाबा लोगोंको पूछते-पूछते श्रीसेठजीके घर पहुँचे। द्वारपर श्रीघनश्यामदासजी जालान थे ही। बाबाके पहुँचते ही उन्होंने पूछा– क्या आप श्रीसेठजीसे मिलनेके लिये आये हैं?

बाबाने उनकी जिज्ञासाका अनुमोदन किया। फिर श्रीघनश्यामदासजी जालानने कहा– आप यहीं बैठिये, मैं अभी पूछकर आता हूँ।

बाबा वहीं बरामदेमें अपना कम्बल और कमण्डलु रखकर बैठ गये। पाँच मिनट बाद ही श्रीसेठजी घरसे बाहर आये। उन्होंने उन युवक संन्यासीको प्रणाम किया तथा विनय पूर्वक पूछा– कहिये क्या आज्ञा है?

बाबाने कहा– मैं आपसे एकान्तमें कुछ देर बात करना चाहता हूँ।

तुरंत एक एकान्त स्थानपर श्रीसेठजी तथा बाबा बैठ गये। उस समय एक विचित्र बात घटित हुई। श्रीसेठजी कभी भी अपने बारेमें कुछ बताया नहीं करते थे। वे स्वयंको बड़ा सुगुप्त रखते थे। कोई कुछ कहता था तो प्रत्युत्तर स्वरूप श्रीसेठजी यही कहते कि आप तो मेरी प्रशंसा कर रहे हैं। ऐसे संगोपन-प्रिय श्रीसेठजीने मिलते ही बाबाके समक्ष मारवाड़ी-हिन्दी-मिश्रित भाषामें अपनी स्वरूप-स्थितिका निवेदन कर दिया। बाबाके पूछनेके पहले ही किसी अज्ञातकी प्रेरणासे उस जिज्ञासाका स्वतः समाधान हो गया, जिसके लिये बाबा कलकत्तेसे बाँकुड़ा आये थे। बाबा यही तो जानना चाहते थे कि क्या उस पत्रके लेखकको वस्तुतः

स्वरूपानुभूति हो गयी है?

अपने अनुमानको सही पाकर बाबाको बड़ी प्रसन्नता हुई। श्रीसेठजीके सामने बाबा नत-मस्तक थे। श्रीसेठजीसे मिलनेके पहले बाबाके मनमें एक और प्रश्न था। बाबा सदाकी तरह अब मन-ही-मन चिन्तन करते हुए यह सोचने लगे– अद्वैत-साधनाके अनुसार पूर्णताकी जो स्थिति होती है, उसमें मेरी प्रतिष्ठा है। अनन्त-सत्य-ज्ञान-आनन्दमय ब्रह्मसे मेरी एकरूपता है। सदा यही अनुभूति रहती है कि जगत न था, न है और न होगा। यह जगत स्वप्नवत्, पूर्णतः मिथ्या है। ऐसी ब्राह्मी स्थितिमें प्रतिष्ठित रहनेके बाद भी एक बात मैं स्वयंमें यह पाता हूँ कि जब मैं भिक्षा करता हूँ तो वह वस्तु अधिक खा जाता हूँ, जो मीठी होती है। श्रीमद्भगवद्गीताजीमें आया है–

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।।

(श्रीगीता– २/५९)

विषयोंका उपभोग न करनेवालेके विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, पर विषयोंमें जो रस है, जो आसक्ति है, वह निवृत्त नहीं होती। इस रसकी, इस आसक्तिकी सर्वथा निवृत्ति तब होती है, जब पर-तत्त्वका दर्शन हो जाये। मैं गीताका बड़ा उपासक रहा हूँ। जब मैं आत्मस्थितिपर विचार करता हूँ तो मुझे कहीं न्यूनता दिखलायी नहीं देती है, पर यह भी सत्य है कि मैं भिक्षामें मीठी वस्तु अधिक खा लिया करता हूँ। मीठी वस्तु अधिक खा लिये जानेके आधारपर क्या मैं यह मान लूँ कि मुझे अपनी पूर्णताका भ्रम है और पर-तत्त्वका मुझे साक्षात्कार नहीं हुआ है?

बाबाने मन-ही-मन यह सोच रखा था कि जो मेरी इस गुत्थीको सुलझा देगा, उसका मैं महापुरुषत्व स्वीकार कर लूँगा। बाबाने अपना यह प्रश्न श्रीसेठजीके सामने रखा। उन्होंने बड़े सरल ढंगसे कहा कि मीठी वस्तु अधिक खा लेनेका अर्थ ब्राह्मी स्थितिमें कोई त्रुटि नहीं है। मीठी वस्तुके खानेकी स्पृहा तो रक्तकी अल्पताका द्योतक है। रक्ताल्पताके समाप्त होते ही वह स्पृहा और स्पृहाजनित क्रिया भी समाप्त हो जायेगी। मेरी सारी उलझन श्रीसेठजीने समाप्त कर दी। उन्होंने सन्देहरहितरूपसे मुझे विभु-तत्वमें प्रतिष्ठित कर दिया।

इसके बाद भगवत्तत्त्वपर परस्परमें विचार-विनिमय होने लगा। बाबा शांकर मतानुयायी थे और अद्वैत साधनाके अनुसार पूर्णताकी जो अत्युच्च स्थिति होती है, उसमें बाबा प्रतिष्ठित थे। अनन्त-सत्य-ज्ञान-आनन्दमय ब्रह्मसे सदा एकात्मताकी अनुभूतिके फलस्वरूप बाबाको यह अनुभव होता रहता था कि जगत न था, न है और न होगा। यह जगत तो स्वप्नवत् पूर्णतः मिथ्या ही है। ऐसी ब्राह्मी स्थितिमें प्रतिष्ठित रहनेके कारण बाबा श्रीसेठजीसे विचार-विनिमय करते समय अपनी अद्वैत निष्ठाका ही प्रतिपादन करते थे। 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नाऽपरः' सिद्धान्त वाक्यके अनुसार बाबाकी स्थापना यही थी कि एक मात्र अद्वैत ब्रह्म ही सत्य है। ब्रह्मके अतिरिक्त अन्य किसीकी सत्ता है ही नहीं। जीव ब्रह्म ही है और सम्पूर्ण जगत स्वप्नवत् मिथ्या है। जीवकी मुक्तिका एक मात्र उत्तम उपाय आत्म-ज्ञान है। ईश्वरका सगुण-साकार स्वरूप और उनकी भक्ति सर्वथा मायाराज्यकी वस्तु है। परम तत्त्वके साक्षात्कारका एक मात्र साधन-पथ ज्ञानयोग है। श्रीसेठजीकी मान्यता इससे भिन्न थी। श्रीसेठजीकी आत्यन्तिकी निष्ठा तो ईश्वरके निर्गुण-निराकार ब्रह्म-स्वरूपमें ही थी। वे मानते थे कि जिस प्रकार बिन्दु सिन्धुमें मिलकर सिन्धुसे अभेद रूपमें एकाकार हो जाता है, उसी प्रकार जीवका परम प्राप्तव्य निर्गुण-निराकार सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें अभेद रूपसे मिलकर एकाकार हो जाना है। परंतु इसके साथ ही श्रीसेठजीकी आस्था ईश्वरके सगुण-साकार-स्वरूपमें भी थी। श्रीसेठजीकी मान्यताके अनुसार जीव सगुण-साकार ईश्वरकी भक्तिके द्वारा भगवत्साक्षात्कार करके परम पदको प्राप्त कर सकता है। श्रीसेठजीकी मान्यताका आधार था श्रीमद्भगवद्गीताके तीसरे अध्यायका तीसरा श्लोक।

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥

(हे निष्पाप अर्जुन! इस लोकमें दो प्रकारकी निष्ठा मेरे द्वारा पहिले कही गयी है ज्ञानियोंकी ज्ञानयोगसे और योगियोंकी निष्काम कर्मयोग से।)

गीता-वक्ता भगवान श्रीकृष्णके इस कथनके आधारपर श्रीसेठजीका सतत प्रतिपाद्य तथ्य यही था कि जिस प्रकार ईश्वरका निर्गुण-निराकार-स्वरूप सत्य है, उसी प्रकार सगुण-साकार-स्वरूप भी सत्य है। निर्गुण-निराकार साध्यकी प्राप्तिके लिये साधन-पथ है ज्ञानयोगका और

सगुण-साकार साध्यकी प्राप्तिके लिये साधन-पथ है भक्ति-प्रधान-कर्मयोगका। ये दोनों साधन-पथ स्वयंमें पूर्ण हैं तथा एक दूसरेसे सर्वथा स्वतंत्र हैं। किसी एक साधन-पथके आश्रयसे साधक अपने जीवनके चरम लक्ष्यतक पहुँच सकता है।

श्रीसेठजीका भक्ति-सम्बन्धी सिद्धान्त बाबाको मान्य नहीं था। श्रीसेठजी अपनी मान्यता समझाना चाहते थे, पर वैसी प्रतिपादन-क्षमता नहीं होनेके कारण बाबाको समझा नहीं पाये। बाबा विद्वान् थे और विद्वानोंकी गोष्ठीमें जिस शैलीसे विचारोंका आलोचन-प्रतिपादन, खण्डन-मण्डन हुआ करता है, उस शैलीसे बाबा अभ्यस्त थे। श्रीसेठजी तो अपनी बातको सीधे-सीधे शब्दोंमें सरल रीतिसे रखना जानते थे, पर बाबाकी शास्त्रीय शैलीके समक्ष उनकी वह सरल पद्धति टिक नहीं पाती थी। शब्द-प्रमाण, पारिभाषिक शब्दावली आदिका प्रयोग करते हुए जिस शास्त्रीय शैलीसे विद्वान् लोग अपने मतका प्रतिपादन किया करते हैं, इसका श्रीसेठजीके पास अभाव था। परिणाम यह निकला कि श्रीसेठजीको अपने प्रयासमें सफलता नहीं मिली। श्रीसेठजी अपनी बात बाबाको समझाना चाहते थे, पर समझा नहीं सके। वे चाह करके भी बाबाको समझा नहीं पाये।

इस विचार-विनिमयका स्वरूप कुछ-कुछ शास्त्रार्थ जैसा था। दोनों पक्षोंकी ओरसे स्वानुभूत सत्यका उद्‌घाटन और प्रतिपादन ही इस शास्त्रार्थमें आदिसे अन्ततक रहा। प्रतिपक्षको परास्त करके विजय-गर्वसे प्रफुल्ल होनेकी भावना किसीके भी मनमें नहीं थी। शास्त्रार्थमें विजयी कहलाकर अहं-भावको परिपोषित करनेकी वृत्तिका कहीं अस्तित्व ही नहीं था। किसी भी प्रकारकी क्षुद्रतासे पूर्णतः विरहित था यह शास्त्रार्थ। दोनों पक्षोंकी ओरसे एक मात्र हो रहा था अपने-अपने अनुभूत सत्यका निवेदन। मनोवृत्तिकी क्षुद्रतासे सर्वथा शून्य होनेके कारण यह शास्त्रार्थ पूर्णतः सात्त्विक था। इसी सात्त्विकताका परिणाम था कि इस विचार-विनिमयमें कटुताके लेशका उद्भव कहीं भी हुआ ही नहीं, प्रत्युत् इस सम्पूर्ण विचार-विवेचनमें आत्यन्तिक सौहार्द परिव्याप्त रहा। इतना होकर भी स्वानुभूत सत्यका आग्रह और उस अनुभव-गत सत्यको भिन्न-भिन्न प्रकारसे प्रस्तुत करनेका पूर्ण प्रयास दोनों पक्षोंमें था ही। यही हेतु

था कि बाबा इस विचार-विनिमयको कभी-कभी शास्त्रार्थ कहा करते थे।

जब बाबा श्रीसेठजीके पास बाँकुड़ा गये थे, उसके तीन-चार दिन बाद ही श्रीसेठजीको सत्संगके लिये राँची जाना था। श्रीसेठजीके अनुरोधपर बाबा भी उनके साथ-साथ राँची गये। बाँकुड़ा तथा राँची, इन दोनों स्थानोंपर लगभग चौदह-पन्द्रह दिनोंतक बाबाका तथा श्रीसेठजीका परस्परमें विचार-विनिमय होता रहा। भले यह विचार-विनिमय दो पक्षतक चला, फिर भी इस अवधिमें बाबाके प्रखर तर्कोंके सामने श्रीसेठजीकी बात उभर नहीं पायी। जहाँतक निर्गुण-निराकार ब्रह्मके (क) साध्य-तत्त्व और (ख) साधन-पद्धतिकी बात थी, वहाँतक इन दोनों विभूतियोंकी मान्यताएँ समान थीं। निर्गुण-निराकार ब्रह्मके साध्य-साधनकी दृष्टिसे दोनों एक दूसरेसे सहमत थे, परंतु सगुण-साकार ईश्वरके (क) साध्य-तत्त्व और (ख) साधन पद्धति, अर्थात् (क) ईश्वरके अस्तित्व और (ख) ईश्वरकी उपासनाके विषयमें बाबा श्रीसेठजीसे सर्वथा असहमत थे। ईश्वर एवं ईश्वरकी भक्ति सम्बन्धी प्रत्येक बातको बाबा मिथ्या-राज्यकी वस्तु मानते थे। यह ठीक है कि ईश्वरकी साकारोपासनासे सम्बन्धित बातें श्रीसेठजी बाबाके हृदयमें स्थापित नहीं कर पाये, परंतु सत्य तो सत्य ही है और जो सिद्धान्त उनके अपने अनुभवसे पूर्णरूपेण स्वतः सिद्ध है, उसे वे कैसे झुठला देते? वह सत्य तो उनका स्वानुभूत था। जब श्रीसेठजी किसी भी प्रकारसे बाबाको नहीं समझा पाये तो उन्होंने बाबासे कहा— आप एक बार भाई हनुमानप्रसाद पोद्दारसे गोरखपुरमें मिल लें।

बाबाने तटस्थ भावसे कहा— पोद्दारजीसे मिलनेके लिये मेरे मनमें उत्साह नहीं।

श्रीसेठजी बाबाके अन्तरमें अपनी बात नहीं उतार पाये, पर बाबा श्रीसेठजीकी स्वरूपानुभूतिपर और उनके चिन्तन-विवेचनपर मुग्ध थे। बाबाका अध्ययन विशाल था। उस अध्ययनके आधारपर बाबाको लगा कि श्रीमद्भगवद्गीता सम्बन्धी श्रीसेठजीके जो भाव थे, विचार थे, अनुभव थे, चिन्तन था, वैसा अन्यत्र देखनेमें नहीं आया और यह गहन चिन्तन यदि लिपिबद्ध नहीं हुआ तो जगत एक दिव्य और दुर्लभ निधिसे वंचित रह जायेगा। बाबाने श्रीसेठजीसे कहा— आप गीता सम्बन्धी अपने विचारोंको लिपिबद्ध करा दें।

अपनी विवशता व्यक्त करते हुए श्रीसेठजीने कहा— कौन करे और कैसे होगा? मैं तो शुद्ध हिन्दी भी ठीक प्रकारसे नहीं बोल पाता।

बाबाने कहा— आप अपने विचार मुझे बतलायें। उनको लिख करके मैं आपको दिखला दूँ। यदि आपको लगे कि मेरे द्वारा ठीक लिखा गया है तो फिर लेखन-कार्य हो।

श्रीसेठजी मारवाड़ी-मिश्रित-हिन्दीका प्रयोग अपने गीता-प्रवचनोंमें किया करते थे। श्रीसेठजीके एक गीता-प्रवचनको बाबाने शुद्ध हिन्दी भाषामें लिपिबद्ध करके दिखलाया। बाबाकी अभिव्यक्ति-कुशलता, भाषा-अधिकार और विषय-प्रवेशको देखकर श्रीसेठजीको बड़ा विस्मय हुआ। बस, तभी यह तय हो गया कि श्रीमद्भगवद्गीताकी टीका लिखी जानी चाहिये और यह भी तय हो गया कि टीका लिखनेके कार्यका आरम्भ गोरखपुरमें होगा। गोरखपुर पहुँचनेकी तिथि निश्चित हो गयी। श्रीसेठजीको कहीं अन्यत्र भी जाना था, अतः वे अलगसे पहुँचनेवाले थे, पर बाबाको पहुँचनेकी तिथिके अनुसार गोरखपुरतककी रेल-टिकट कटाकर दे दी गयी।

* * * * *

बाबूजी-बाबा मिलन की दिव्यता

बाबा गोरखपुरके रेलवे-स्टेशनपर उतरे। दो रात और एक दिनकी रेल-यात्रामें बाबाको निराहार रहना पड़ा। रेल-यात्राके समय बाबाने किसीसे भिक्षाके लिये याचना की नहीं और किसीने भी भिक्षाके लिये बाबासे कुछ कहा ही नहीं। आहारके बिना बड़ी कमजोरी लग रही थी। स्टेशनसे बाहर आकर बाबाने गीताप्रेसका मार्ग पूछा तथा स्टेशनसे दूरी पूछी। लगभग तीन मीलकी दूरीकी बात सुनकर बाबाको इतना लम्बा मार्ग तय करना बड़ा भारी लगा। बाबा न तो पैसेका स्पर्श करते थे और न किसी जानदार सवारीपर चढ़ते थे। दो दिनसे भूखे रहनेके कारण अशक्तताकी अनुभूति इतनी अधिक हो रही थी कि गीताप्रेस पहुँचना पहाड़-सा लग रहा था, पर कोई दूसरा उपाय भी नहीं था। बाबा थोड़ी दूर चलते, फिर थक करके बैठ जाते। इस प्रकार नौ-दस बार ठहरते-बैठते-उठते हुए बाबाने वह तीन मीलकी दूरी अढ़ाई-तीन घंटेमें

तय की। गीताप्रेसके द्वारपर पं.श्रीलादूरामजी शर्मा मिले। बाबाने उनसे पूछा— क्या यहाँ श्रीसेठजी हैं?

श्रीशर्माजीने कहा— सेठजी आनेवाले थे, पर अभीतक आये नहीं हैं। हो सकता है, एक-दो दिनमें आ जायें।

बाबाको बाबूजीके नामकी स्मृति हो आयी और उन्होंने श्रीशर्माजीसे पूछा— क्या हनुमानप्रसादजी पोद्दार हैं?

श्रीशर्माजीने बतलाया— वे हैं तो गोरखपुरमें ही, पर वे गीतावाटिकामें हैं।

बाबा— गीतावाटिका यहाँसे कितनी दूर है?

श्रीशर्माजी— तीन मील।

अभीतक बाबा खड़े-खड़े बात कर रहे थे, पर पुनः तीन मीलकी बात सुनते ही वे हताश होकर वहीं भूमिपर बैठ गये। बड़ी कठिनाईसे पैदल चलकर तीन मील पार करके वे आये थे और अब तीन मीलका अगला रास्ता कैसे तय हो पायेगा, यही समस्या थी। शरीरकी दुर्बलता तथा उपवास जनित अशक्तताके कारण तीन मील पुनः चलना असम्भव-सा लग रहा था। उसी समय श्रीशर्माजीने कहा— मैं आपको इक्का कर देता हूँ, उसपर चढ़कर आप चले जाइये।

इक्केकी सवारीमें घोड़ा लगता है और जानदार सवारी बाबाको स्वीकार नहीं थी, पर विवशताकी स्थितिमें उस सवारीपर चढ़ना पड़ा। इक्केका भाड़ा श्रीशर्माजीने ही चुका दिया था। इक्का गीताप्रेससे गीतावाटिका आया और प्रवेश-द्वारपर बाबा उतर पड़े।

आजकी और तबकी गीतावाटिकामें बड़ा अन्तर है। उन दिनों न बिजलीका प्रकाश था, न चारों ओर जन-बस्ती थी, न पक्के मकान थे, न पक्की सड़क थी और न ट्रक-कार-बसके सतत आवागमनसे उत्पन्न कोलाहल था। तब सड़क ऐसी कच्ची थी कि वर्षा हो जानेपर सड़कपर कीचड़ हो जाता था। फिर कीचड़ तथा पानीमें पैदल चलने-वालोंको बहुत अधिक परेशानी होती थी। रातके समय दीपक या लालटेनसे काम चलाया जाता था। चारों ओर अमरूद और आमके बड़े-बड़े बाग थे। उन दिनों यह क्षेत्र ऐसा निर्जन था कि लोग दिनमें आते हुए डरते थे, रातकी तो बात ही क्या? उस समयकी गीतावाटिकाको एक प्रकारसे लघु

वनस्थल ही कहना चाहिये। हरी-भरी लताओं तथा ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंके कारण यह उपवन बड़ा सघन था। फूलोंके पौधोंकी तो संख्या ही नहीं। फल-फूल खूब होते थे। वैसी सघन हरियाली अब नहीं रही। ऐसे इस ऋषि-उपवनमें अपने इने-गिने सहयोगियोंके साथ रहते हुए बाबूजी 'कल्याण' पत्रिकाके सम्पादनका कार्य किया करते थे। गीतावाटिकाके प्रवेश-द्वारपर बाबाको श्रीदूलीचन्दजी दुजारी मिले। श्रीदूलीचन्दजी दुजारीसे बाबाको ज्ञात हुआ कि बाबूजी गीतावाटिकामें हैं।

वाटिकाके अग्रभागमें एक भवन था (और है), जिसमें बाबूजी सपरिवार रहा करते थे। इसी भवनमें सम्पादकीय विभागका कार्यालय भी था। उस भवनके बरामदेकी सीढ़ियोंपर बाबा आकर बैठ गये। इन्हीं दिनों गीतावाटिकामें एक वर्षका अखण्ड-हरिनाम-संकीर्तन चल रहा था। संकीर्तन-पंडालमें बाबूजी अण्डी (एक विशेष प्रकारकी रेशमी चादर) ओढ़े हुए हाथसे ताली बजा-बजा करके कीर्तन कर रहे थे। श्रीदूलीचन्दजीने जाकर बाबूजीसे कहा– एक दुबले-पतले युवक संन्यासी आये हैं और आपको पूछ रहे हैं।

जब श्रीदूलीचन्दजी बाबूजीके पास जा रहे थे, उस समय बाबाने बस, एक बार दृष्टि उठाकर पंडालकी ओर देखा था, फिर तो उनकी दृष्टि नीची हो गयी। श्रीदूलीचन्दजीके कहते ही बाबूजी संकीर्तन-पंडालसे चल पड़े तथा बाबाके पास आये। बाबा तो दृष्टि नीची किये हुए बैठे थे, तभी बाबूजीने अपने दोनों हाथोंसे बाबाके दोनों चरणोंको छू करके प्रणाम किया।

उस प्रणामने चमत्कारी परिणाम उपस्थित कर दिया। प्रणाम करते समय बाबूजीने बाबाके चरणोंका स्पर्श किया था, उस स्पर्शका प्रभाव सर्वथा दिव्य, सर्वथा लोकोत्तर था। बाबूजीकी अँगुलियोंका स्पर्श पाते ही बाबाकी परिणति निराकारवादीसे साकारवादीके रूपमें हो गयी। ऐसी आश्चर्यमयी, आकस्मिक, आत्यन्तिक और आशिख परिणतिकी कल्पना भला क्या कोई कभी कर सकता था अथवा है? सचमुच उस स्पर्शने एक महदाश्चर्य मूर्तिमान कर दिया। गोरखपुर आनेसे पहले बाबाका श्रीसेठजीसे चौदह-पन्द्रह दिनतक शास्त्रार्थ हुआ था। जो कार्य वह शास्त्रार्थ नहीं कर पाया, वही कार्य एक क्षणमें इस स्पर्शने कर दिया।

बाबा कहा करते थे– उस स्पर्शने तत्काल मेरे अन्दर व्रज-भावका सम्पूर्ण रूपसे बीजारोपण कर दिया। साकारोपासनाकी तो बात ही क्या! वस्तुतः ऐसी बात तो साधारण स्तरकी होगी। साकारोपासनाकी अन्तरंगतम हृदय-वस्तु ही उस स्पर्शने प्रदान कर दी। न जाने कितनी-कितनी उपासना-साधनाके उपरान्त भी जो वस्तु प्राप्त नहीं होती, वह लव मात्रमें मुझे कैसे प्राप्त हो गयी, यह रहस्य बुद्धिगम्य है ही नहीं। यह सब अनुमानसे अति अतीत है। बस, इतना ही कहा जा सकता है कि साकारोपासनाकी हृदय-वस्तु जो व्रज-भाव है, वह व्रज-भाव बाबूजीके उस अद्भुत स्पर्शसे लव मात्रमें मेरे अन्तरमें सुस्थापित हो गया। लोकमें सदा ही देखा जाता है कि देनेवाला गर्वोन्नत मस्तकसे देता है और लेनेवाला झुककर लेता है तथा हाथ पसारकर लेता है, किन्तु श्रीपोद्दार महाराज द्वारा व्रज-भावकी इस अद्भुत प्रदान-प्रक्रियामें क्रम विपरीत रहा। दिव्य वस्तुका यह प्रदाता कैसा अनोखा है कि जो नत-मस्तक होकर दे रहा है, जो झुककर दे रहा है, जो अपने हाथ फैलाकर दे रहा है और जो चरणोंको छूकर दे रहा है। ब्राह्मी स्थितिकी मस्तीमें मैं चतुर्थाश्रमी संन्यासी न तो झुका और न हाथ ही पसारा, मनसे भी ऐसा नहीं हुआ, परंतु 'ज्ञानोत्तर भावराज्य'की रसमयतामें सतत निमग्न श्रीपोद्दार महाराजको वस्तुका दान करते समय झुकनेके लिये सोचना नहीं पड़ा। सहज भावसे झुक करके अति विनम्र होकर उन्होंने अपने जीवनकी क्या निधि नहीं दे दी?

वस्तुतः रसामृतके दानकी यह प्रक्रिया भी कितनी अद्भुत है? झुकना चाहिये था ग्रहीताको, परंतु झुक रहा है प्रदाता। गागर आया सागरके पास। गागर नहीं झुका, झुक गया सागर ही। सागर पूर्णतः झुक गया। झुक पड़ा सागर रसामृतका पान करानेके लिये। वह बह पड़ा और रससे सिक्त हो उठा पात्र। पात्र रसमय हो उठा।

बाबाकी दृष्टि बाबूजीपर तभी लग गयी थी, जब वे प्रणाम कर रहे थे। प्रणाम करके बाबूजीने ज्यों ही अपना मस्तक ऊपर उठाया, उनकी दृष्टि बाबापर ठहर गयी। बाबाको बाबूजी एकटक देखने लगे। बाबा भी बाबूजीको एकटक देखने लगे। लगभग तीन-चार मिनटतक परस्पर एकटक देखते रहे। तीन-चार मिनटका समय कम नहीं होता। इस अवधिमें निश्शब्द

दोनों एक दूसरेको अपलक देखते रहे। देखनेके स्थानपर यह कहना चाहिये कि परस्पर निहारते रहे, ऐसे निहारते रहे मानो कितने युगोंके बाद यह सम्मिलन हुआ है।

बाबा स्वयंको कट्टर वेदान्ती कहा करते थे, पर अब वे बदल चुके थे। बाहरसे उनका गैरिक वस्त्रधारी संन्यासीका वेष ज्यों-का-त्यों था, पर उनके भीतर अकल्पनीय परिवर्तन हो चुका था। बाबाकी परिणति अद्वैतवादी ज्ञानीसे केवल साकारोपासक आस्तिक भक्तके रूपमें ही नहीं हुई, अपितु वे मधुरोपासनाके सरस सिन्धुमें क्रमशः गहरेसे भी अति गहरे उत्तरोत्तर उतरते चले गये। बाबा और बाबूजीकी यह प्रथम भेंट सं.१९९३ वि. आश्विन शुक्ल द्वादशी मंगलवार तदनुसार २७ अक्टूबर १९३६ को हुई थी। इस तिथिका संकेत बाबाने अपने स्वरचित चौपदेकी एक पंक्तिमें किया है– 'द्वादशी प्रदोष समय आश्विन शुक्लाकी यह घटना प्रियतम।'

श्रीचैतन्यमहाप्रभुसे श्रीनित्यानन्दमहाप्रभुका मिलन अथवा श्रीरामकृष्ण परमहंससे स्वामी विवेकानन्दका मिलन, उस मिलन जैसा ही है यह गरिमामय दिव्य मिलन बाबूजी और बाबाका, जो अपने वस्तु-गुणके कारण भक्ति-राज्यका एक अनुपम एवं स्मरणीय प्रसंग है। इस मिलनके फलस्वरूप अहैतुकी ईश्वरानुरक्तिके ऐसे भव्य सिद्धान्तोंका प्रतिपादन और प्रचार हो सका, जो काम-कालुष्यसे सर्वथा विरहित है। इतना ही नहीं, इस मिलनके फलस्वरूप भविष्यमें सच्चिदानन्दमयी सरस लीलाओंकी ऐसी मधुर-मन्थर अगाध-अविरल स्रोतस्विनी प्रवाहित हो सकी, जिसके स्मरण मात्रसे अन्तर आह्लादित हो उठता है।

बाबा ट्रेनसे यात्रा करके राँचीसे गोरखपुर आये थे। वे तो किसीसे कुछ याचना करते थे नहीं, अतः दो दिनतक ट्रेन यात्रामें निराहार रहना पड़ा था। गीताप्रेससे गीतावाटिका आनेपर बाबा और बाबूजीका बड़ा भावपूर्ण परस्परावलोकन हुआ। प्रणामोपरान्त यह परस्परावलोकन अति दिव्य था। निरन्तर चुपचाप दो-तीन मिनटतक देखते रहना, यह अवधि कम नहीं होती। भावके किञ्चित् शमित होनेपर बाबूजीने बाबासे पूछा– क्या आपने भिक्षा की है?

बाबूजी द्वारा पूछे जानेपर बाबाने तनिक-सा मुस्करा दिया। बाबूजी

तुरन्त समझ गये कि बाबाने भिक्षा नहीं की है। बाबूजी उसी समय घरके भीतर आये। थालमें फलाहारी वस्तुएँ लेकर बाबूजी बाबाके पास आये। बाबाने कहा— मैं पहले स्नान करना चाहता हूँ।

बाबूजीने तत्काल स्नानकी व्यवस्था की। स्नानके उपरान्त बाबाको बाबूजीने भिक्षा करवायी। भिक्षाके समय बाबूजीने पत्तल परोसनेका कार्य स्वयं ही किया। इसी प्रकार कुटियामें बाबाके विश्रामके लिये पुआलका गद्दा भी बाबूजीने स्वयं ही बिछाया। बाबाके विश्रामका प्रबन्ध एक कुटियामें किया गया था। बाबा स्वयं देख रहे थे बाबूजीद्वारा किये गये अतिथि-सत्कार और संत-सेवाके भाव और चावको और उसे देख-देख करके बाबाको बड़ा विस्मय हो रहा था, यह विस्मय क्षण-प्रति-क्षण बढ़ता जा रहा था— क्या ऐसे शील-सम्पन्न और सेवा-भावी मानव इस भूतलपर हो सकते हैं? ऐसा सौजन्य, इतना शील, इतनी दीनता आजके युगमें देखनेको कहाँ मिलती है?

सब आवश्यक कार्योंसे निवृत्त होनेके बाद बाबा जब कुछ सुस्थिर हुए, तब बाबूजीसे थोड़ी बातचीत हुई। बाबाने संक्षेपमें बतलाया किस प्रकार राँचीमें पूज्य श्रीसेठजीसे श्रीमद्भगवद्गीताकी टीका लिखनेकी बात उठी और फिर गोरखपुर आनेका कार्यक्रम बना। सारे विवरणको सुनकर बाबूजीने कहा— स्वामीजी! मुझे तो आज ही वाराणसी जाना पड़ रहा है। वहाँ एक स्वजन मरणासन्न स्थितिमें हैं। वाराणसी जाना आवश्यक है। तीन-चार दिनमें मैं अवश्य लौट आऊँगा। तबतक आप यहीं विराजे रहें। आपको कोई कष्ट नहीं होगा। मेरे व्यक्ति यहाँ आपकी भली प्रकारसे सँभाल करेंगे।

बाबाने कहा— आप मेरी ओरसे निश्चिन्त हो जायें। आप चिन्ता-रहित होकर वाराणसीकी यात्रा करें। मैं यहींपर रहूँगा।

* * * * *

विशिष्ट शरद पूर्णिमा

बाबूजी उसी रात वाराणसी चले गये। बाबाने उस रात्रिमें गहरी नींद ली। ट्रेनकी लम्बी यात्रामें बाबा ठीक प्रकारसे सो नहीं पाये थे। बाबूजी दो-तीन दिनमें ही लौटकर आनेवाले थे, पर वे लौटकर आये प्रतिपदा-तिथिके दिन। बाबूजी जिस दिन आये, उससे पहलेवाली रात्रिका प्रसंग है।

प्रतिपदासे पहले बीत गयी थी आश्विन शुक्ल पूर्णिमा। यह थी शारदीय पूर्णिमा, रास-पूर्णिमावाली तिथि। ब्रह्म-विचार-गत और ब्रह्म-चिन्तन-रत बाबाको रास-पूर्णिमासे भला क्या प्रयोजन? जिन बाबाके लिये श्रीमद्भागवतपुराणका रास-पञ्चाध्यायी-अंश सदैव आलोचनाका विषय रहा और जिन बाबाके लिये सगुण-साकार-तत्त्व और साकारोपासना सर्वदा ही उपहासास्पद बनी रही, ऐसे वे कट्टर वेदान्ती बाबा अपनी कुटियामें आसनपर बैठे हुए ब्रह्म-तत्त्वके चिन्तनमें लीन थे। जब ठीक मध्य-रात्रिकी वेला उपस्थित हुई, तभी बाबाको सुनायी पड़ा—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण रहे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।।

महामन्त्रकी यह स्वर-लहरी बड़ी मनोहर, बड़ी मधुर, बड़ी सुरीली, बड़ी आकर्षक थी। यह पता नहीं कि वह स्वर-लहरी किस दिशासे आ रही थी, परंतु वह थी बड़ी मन-मोहिनी। उस सुललित-सुमधुर नाम गायनकी ओर बाबाका मन आकृष्ट हो गया। उस गायनके साथ-साथ बाबा भी गायन करने लग गये। बाबाका कण्ठ भी बड़ा मधुर था। बाबाके द्वारा गायन तो धीरे-धीरे हो रहा था, पर इसीके साथ उनके नेत्रोंसे अश्रुके बिन्दु टपकने लगे और फिर उन टपकते बिन्दुओंने कपोलोंपर प्रवाहका रूप धारण कर लिया। यह भावपूर्ण स्थिति लगभग पन्द्रह मिनटतक रही, परंतु इस स्थितिका प्रभाव न जाने कितनी देरतक बना रहा। बाबाके लिये यह एक विचित्र और नवीन अनुभव था।

* * * * *

श्रीहनुमानगढ़ी में श्रीकृष्ण-दर्शन

शरद पूर्णिमाके अगले दिन प्रतिपदाको बाबूजी वाराणसीसे वापस आये। आनेपर बाबासे मिले तथा पूछा– यहाँ आपको कोई कष्ट तो नहीं हुआ?

बाबाने कहा– कष्ट तो तनिक भी नहीं हुआ। यहाँ मेरी सँभाल सब रीतिसे भली प्रकार हुई, किन्तु मेरा एक निवेदन है। मेरे ठहरनेकी व्यवस्था किसी जन-रव-शून्य स्थानपर कर दें। मुझे भीड़ और कोलाहल प्रिय नहीं है। यहाँपर जो अखण्ड हरिनाम संकीर्तन चल रहा है, उससे वातावरण सदा गुञ्जित रहता है और कभी-कभी तो अति तुमुल स्वरसे कीर्तन होता है। कोलाहलपूर्ण एवं जनसंकुल वातावरणमें रहनेका मुझे अभ्यास नहीं है, इसीलिये यह निवेदन किया है।

बाबूजीने कोई सुन्दर प्रबन्ध कर देनेका तुरन्त आश्वासन दिया। अगले दिन बाबूजी स्वयं स्थानका प्रबन्ध करनेके लिये निकले। अनेक बातोंको विचारने तथा कुछ स्थानोंको देखनेके बाद राप्ती नदीके किनारे श्रीहनुमानगढ़ीवाला स्थान उन्होंने निश्चित किया। गोरखपुर राप्ती नदीके तटपर ही बसा हुआ है। नदीके किनारे श्रीहनुमानगढ़ी एक निर्जन एवं नीरव स्थान है। गीतावाटिका गोरखपुरके उत्तरी छोरपर है तो श्रीहनुमानगढ़ी दक्षिणी छोरपर। यहाँ श्रीहनुमानजीका साधारण-सा मन्दिर है। गढ़ीके एक कमरेमें बाबाके आवासकी व्यवस्था की गयी। नदीके तटपर यह एकान्त स्थान बाबाको बड़ा प्रिय लगा।

बाबा गीतावाटिकासे श्रीहनुमानगढ़ी चले आये। इस समयतक पूज्य श्रीसेठजीका गोरखपुर शुभागमन नहीं हो पाया था। श्रीसेठजीका आगमन कब हुआ, यह निश्चित रूपसे ज्ञात नहीं, किन्तु श्रीमद्भगवद्-गीताकी टीकाके लेखनका कार्य लगभग एक-डेढ़ मास बाद आरम्भ हो पाया। टीका-लेखनके कार्यारम्भके पूर्व जो-जो प्रसंग श्रीहनुमानगढ़ी-वासके समय घटित हुए, उनका बाबाके जीवनमें अति महत्त्व है।

इन दिनों बाबा मुख्यतः चार प्रकारके जप किया करते थे। 'सोऽहम्', 'शिवोऽहम्', 'आनन्दोऽहम्', 'ॐ', इन्हीं चारका जप बाबाद्वारा हुआ करता था। जप आरम्भ करते ही यह सारा जगत तुरन्त

विलीन हो जाता था और रह जाती थी एक मात्र ब्रह्म-सत्ता। सर्वत्र आनन्द-ही-आनन्द परिव्याप्त हो उठता था। परमानन्दमें बाबाकी सम्यक् स्थिति थी ही।

एक दिन राप्ती-स्नानके बादकी बात है। बाबा राप्ती-स्नान करनेके लिये प्रतिदिन जाया करते थे। वे स्नान करके जलसे पूर्ण कमण्डलु हाथमें लिये हुए भीगे वस्त्रोंमें ही श्रीहनुमानगढ़ी वापस आ रहे थे। अपने अभ्यासके अनुसार बाबा 'सोऽहम्', 'सोऽहम्'का जप कर रहे थे। लौटते समय बिना प्रयास एक परिवर्तन हो गया। अनायास 'सोऽहम्'का जप छूट गया और शारदीय पूर्णिमाकी मध्य रात्रिमें जो जप पन्द्रह मिनटके लिये हुआ था, वही जप स्वतः होने लग गया। इतना ही नहीं, वह जप अखण्ड रूपसे चलने लगा। 'सोऽहम्'के स्थानपर सोलह नामवाले महामन्त्रका जप अपने आप निरन्तर होने लग गया।

श्रीहनुमानगढ़ी आकर बाबाने भीगे वस्त्रोंको बदला और दूसरे गैरिक वस्त्रोंको धारण किया। वस्त्र-परिवर्तनके उपरान्त बाबा ब्रह्म-चिन्तनके लिये अपने आसनपर विराजित हुए। श्रीहनुमानगढ़ीमें बड़े-बड़े केलेके वृक्ष लगे हुए थे। बाबाने दो कदली-स्तम्भोंके मध्य अपना आसन बिछाया था। बाबा पूर्वाभिमुख बैठे हुए थे और जप करते हुए ब्रह्म-चिन्तनमें तल्लीन थे। तभी अकस्मात् भगवान श्रीकृष्ण हाथमें वंशी धारण किये आकाशमें खड़े हुए दिखलायी दिये। ज्यों ही भगवान श्रीकृष्णकी दिव्याकृति बाबाके सामने प्रकट हुई, बाबाके मनमें तत्क्षण यह भाव आया कि यह माया जनित है। यह तो मिथ्या मूर्ति है। माया-राज्यकी यह मिथ्या वस्तु मेरे समक्ष कहाँसे आ गयी?

अद्वैत-तत्त्व-वादी बाबाने बड़ा प्रयत्न किया कि भगवान श्रीकृष्णका यह रूप मेरे सामनेसे हट जाये और मैं ब्रह्म-चिन्तनमें लीन हो जाऊँ, पर न तो वह गगनस्थ मूर्ति बाबाके सामनेसे हटती थी और न बाबा ब्रह्म-चिन्तनमें लीन हो पाते थे। बाबाने बार-बार प्रयास किया, पर सफलता नहीं मिल पा रही थी। बाबा भी हार माननेको प्रस्तुत नहीं थे। उस अलौकिक मूर्तिको अपने सामनेसे हटानेका प्रयास बाबा लगातार दो घंटेतक करते रहे, पर भरपूर प्रयासके बाद भी वह मूर्ति सामने ही विराजित रही। अथक प्रयासके बाद भी वह सगुण-साकार-तत्त्व बाबाके

सामनेसे हटनेका नाम भी नहीं ले रहा था। बाबाके अद्वैत-तत्त्व-निष्ठ जीवनमें सतत प्रयासको करारी मात मिलनेका यह प्रथम प्रसंग था। बाबाने थककर प्रयास छोड़ दिया।

भगवान श्रीकृष्णका वह सगुण-साकार स्वरूप किशोरावस्थाका था। कदम्ब वृक्षके सहारे खड़े होकर वे वेणु वादन कर रहे थे। वेणुका शीर्षभाग भगवान श्रीकृष्णके अरुण अधरोंसे संलग्न था और दूसरा छोर भगवानके उदरप्रदेशके पास था। ज्यों ही बाबाने साकार विग्रहको अपने सामनेसे हटानेका प्रयास विसर्जित किया, त्यों ही वह चिन्मय मूर्ति आकाशसे नीचे उतरने लगी और बाबाकी ओर बढ़ने लगी। बाबाकी ओर बढ़ते-बढ़ते बाबाके समीप आ गयी। फिर कदम्ब-वृक्ष-सहित वेणु-वादन-तत्पर भगवान श्रीकृष्ण बाबाके वक्षःस्थलमें प्रवेश कर गये। वक्षःस्थलमें प्रवेश करते ही उस सच्चिदानन्दमयी मूर्तिकी दिशा परिवर्तित हो गयी। उसका मुख पश्चिम दिशासे पूर्व दिशाकी ओर हो गया। वक्षःस्थलमें प्रवेश करके वह परम सुन्दर मूर्ति वहाँ सदाके लिये प्रतिष्ठित हो गयी। बाबा कई बार कहा करते थे—भगवान श्रीकृष्णका वह सुन्दर साकार श्रीविग्रह आजतक मेरे हृदय-देशमें विराज रहा है। उस श्रीविग्रहकी जैसी कान्ति, जैसी छवि, जैसी शोभा है, वह किसी भी चित्र या मूर्तिमें देखनेको नहीं मिलती।

यह अवश्य ही एक ईश्वरीय विधान था कि परम निष्ठावान वेदान्ती बाबाको 'ज्ञानोत्तर भगवद्भावराज्य' में नित्य अवस्थित बाबूजीका संस्पर्श और सम्पर्क मिला और इस संस्पर्श और सम्पर्कके फलस्वरूप बाबाकी परिणति निराकारवादीसे साकारवादीके रूपमें हो गयी। अब बाबाकी सगुण-साकार-तत्त्वमें वैसी ही निष्ठा थी, जैसी उनकी निर्गुण-निराकार-तत्त्वमें। गोरखपुर आनेके पूर्व बाबाका श्रीसेठजीसे चौदह दिनतक शास्त्रार्थ हुआ था और इस विचार-विनिमयमें बाबा किसी भी प्रकारसे सगुण-साकार-तत्त्वको स्वीकार करनेके लिये प्रस्तुत नहीं थे। उन्हीं बाबाने गोरखपुर आनेके बाद बिना किसी प्रकारका विचार-विनिमय हुए ही साकारोपासनाके अस्तित्वको और महत्त्वको सिद्धान्ततः और व्यवहारतः स्वीकार कर लिया। यह स्वीकृति भी हो गयी गोरखपुरमें श्रीसेठजीसे भेंट होनेके पूर्व ही। सगुण-साकार-तत्त्वके साक्षात्स्वरूप हैं भगवान श्रीकृष्ण और उन्हीं भगवान श्रीकृष्णका परमामृतोपदेश है 'श्रीमद्भगवद्गीता'। भगवान

श्रीकृष्णके सगुण-साकार-तत्त्वपर आस्थाके अभावमें उनकी दिव्य भगवदीय वाणी श्रीमद्भगवद्गीताकी टीका कितनी श्रेष्ठ हो पाती, यह एक विचारणीय तथ्य है। श्रीमद्भगवद्गीताकी टीकाके लेखन-कार्यको आरम्भ करनेके पूर्व जिस प्रकारकी मनोभूमिका आवश्यक थी, उसी आवश्यकताकी परिपूर्तिके लिये ईश्वरीय योजनाके अनुसार बाबाका गीतावाटिकामें शुभागमन हुआ और पूज्य बाबूजीका संस्पर्श और सम्पर्क मिला। प्रथम मिलनके अवसरपर बाबूजीने प्रणाम करते समय बाबाके चरणोंका जो स्पर्श किया, वह मात्र स्पर्श नहीं, एक महान संस्पर्श था। संस्पर्शके उस दिव्य क्षणमें ही सगुण-साकार-तत्त्व और साकारोपासनाका बीजारोपण हो गया। वह बीज इतना शीघ्र अंकुरित हो उठेगा, इसकी कल्पना कोई कर ही नहीं सकता था। बाबूजी जैसे सर्वसमर्थ संतके अति सुगुप्त महान दानका यह परम सुन्दर परिणाम था कि बाबाको भगवान श्रीकृष्णके दर्शन मिले, वे सगुण-साकार-तत्त्वके प्रति निष्ठावान बन गये और अब टीका-लेखनके कार्यमें उनके द्वारा सहयोग-प्रदान सुचारु-श्रेष्ठ रूपसे हो सकता था।

* * * * *

गोपी-वपु का दिव्यावतरण

यह पहले बतलाया जा चुका है कि श्रीमद्भगवद्गीतापर श्रीसेठजीके विचारोंको सुनकर बाबाको ऐसा लगा कि यह तत्त्व-चिन्तन तो भारतकी अद्भुत आध्यात्मिक निधि है और न केवल लोक-हितकी दृष्टिसे, अपितु आध्यात्मिक वाङ्मयकी संवृद्धिके लिये भी इसे लिखित रूप प्रदान किया जाना चाहिये। बाबाने अपना सहयोग देनेका आश्वासन दिया। सहयोगके प्रस्तावसे श्रीसेठजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। श्रीगीताजीकी टीकाके लेखन-कार्यकी दृष्टिसे बाबा गोरखपुर आये थे। बाबा तो गोरखपुर आ गये, परन्तु सेठजीको आनेमें बड़ा विलम्ब हुआ। गीता-प्रचार एवं सत्संगके लिये कतिपय अन्य-अन्य स्थानोंपर उनका रुकना आवश्यक हो गया था।

श्रीसेठजीके गोरखपुर आनेपर श्रीमद्भगवद्गीताकी टीका लिखनेका कार्य आरम्भ हो गया। विद्वद्-गोष्ठीमें पहले श्रीगीताजीके श्लोकोंके अर्थपर

विचार किया जाता। यह विचार-गोष्ठी प्रतिदिन बैठती। इस गोष्ठीमें रहते श्रीसेठजी, स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज, बाबा, परमादरणीय श्रीहरिकिशनदासजी गोयन्दका (श्रीसेठजीके छोटे भाई) आदि-आदि। बाबाका कार्य यह था कि इस गोष्ठीमें श्रीगीताजीके श्लोकोंपर भिन्न-भिन्न आचार्योंके मतोंको बतलाना। तदुपरान्त श्लोकमें निहित रहस्यपर परस्परमें विचारोंका आदान-प्रदान होता। इस रहस्य-मन्थनमें श्रीसेठजीका मत ही अन्तिम निर्णयके रूपमें मान्य रहता। श्रीसेठजीके इन विचारोंको ही बाबा लिपिबद्ध करते। श्रीमद्भगवद्गीतापर ये लिपिबद्ध विचार पहले 'कल्याण' पत्रिकाके विशेषांक 'गीता-तत्त्वांक'के रूपमें प्रकाशित हुए, फिर इसे 'गीता-तत्त्व-विवेचनी' नामक एक स्वतन्त्र पुस्तकके रूपमें गीताप्रेसने प्रकाशित कर दिया। सत्संगके लिये श्रीसेठजीको प्रायः यहाँ-वहाँ जाना ही पड़ता था, अतः इस भ्रमणमें भी विचार-गोष्ठीमें भाग लेनेवाले लोग यथासंभव साथ-साथ जाते थे। इस प्रकार निरन्तर तत्परतापूर्वक संलग्न रहनेके बाद लगभग अढ़ाई वर्षमें 'गीता-तत्त्व-विवेचनी'के लेखनका कार्य सम्पन्न हुआ।

लेखन-कार्यकी दृष्टिसे बाबाको सेठजीके साथ रहना ही पड़ता था। सत्संगके लिये सेठजी जहाँ भी जाते, बाबाको जाना पड़ता। अब सन् १९३७ ई.का एक महत्त्वपूर्ण प्रसंग है। इस प्रसंगको लिखनेसे पहले प्रसंगकी वैचारिक पृष्ठभूमिका उल्लेख आवश्यक लग रहा है।

सिद्धान्ततः यह सही है और श्रीमद्भगवद्गीताकी यह मान्यता भी है कि योगीकी साधनाका प्रवाह कभी विखण्डित नहीं होता और योग-भ्रष्ट अपने अगले जन्ममें साधन-पथपर चल पड़ता है। उसके पिछले जन्मकी अपूर्ण साधना अगले जन्ममें पूर्णताकी ओर अग्रसर हुआ करती है। यही कारण है कि किसी बालककी असामान्य प्रतिभाको देखकर उसे योग-भ्रष्ट अथवा अत्यधिक संस्कारी कहा जाता है। वर्तमान कालकी अत्युत्कृष्ट प्रतिभा अथवा असाधारण सफलता ऐसा सोचनेके लिये बाध्य कर देती है कि इसका सम्बन्ध अवश्य भूतकालकी निरन्तर तत्परता और सतत साधनासे है। श्रीप्रिया-प्रियतमके लीला-सिन्धुमें नित्य निरन्तर निमज्जनकी दृष्टिसे बाबाकी अद्भुत स्थितिका जो स्वरूप और स्तर था, उसे देखकर कोई भी कह सकता है कि इसका सम्बन्ध अवश्य ही

पूर्व-जन्मकी साधनासे होगा।

इस तथ्यपर प्रकाश डालते हुए बाबाने स्वयं ही कहा था— मेरे जीवनमें व्रजभावकी सरस धारा, पूर्व जन्मकी साधनाका फल नहीं है। मैं तो शांकर मतानुयायी कट्टर वेदान्ती था। मेरे जीवनमें जो अद्वैत-निष्ठा थी, उसके बारेमें मैं यह स्वीकार कर सकता हूँ कि मेरे पूर्व जन्ममें निराकार स्वरूपकी जो साधना रही होगी, वही साधना इस जीवनके आरम्भिक कालमें चली और वह निराकार साधना पूर्णताकी स्थितिको पहुँच गयी, पर जहाँतक मेरे जीवनमें व्रज-भावके वपन और पल्लवनका प्रश्न है, यह सर्वथा श्रीपोद्दार महाराजके सम्पर्कका परिणाम है। यह उनका ही कृपा-प्रसाद है कि मुझ निराकारवादी अद्वैत-तत्त्व-निष्ठके जीवनमें मधुर भावापन्न रसोपासनाकी रसमयी धारा प्रवाहित हो उठी। प्रथम मिलनके समय श्रीपोद्दार महाराजने मुझ संन्यासीको प्रणाम करनेकी भावनासे मेरे चरणोंका स्पर्श किया और स्पर्शके उसी क्षणमें व्रज-भावकी महाविचित्र गूढ़तम वस्तु उन्होंने मुझे प्रदान कर दी।

बाबूजीसे मिलनेके उपरान्त ही गोपी-भावकी रसमयी साधना सही रूपमें आरम्भ हुई। साधना करते-करते भाव-देहकी भावना इतनी प्रगाढ़ हो गयी कि बाबाको अपना पुरुष-शरीर-भाव ही विस्मृत हो गया। बाबा बार-बार कहा करते थे— यह भाव-वपु मात्र कृपासे प्राप्त होता है। किसी सिद्ध संतके अनुग्रहसे ही भावराज्यकी भाव-साधनामें प्रवेश सम्भव हो पाता है। श्रीपोद्दार महाराजके अनुग्रहने मेरे जीवनमें महान परिवर्तन ला दिया। मेरा सारा जीवन रसमय हो गया।

अब सन् १९३७ का यह महत्त्वपूर्ण प्रसंग इस प्रकार है। बाबा गोरखपुर आये हुए थे और गीताप्रेसके एक कमरेमें ठहरे हुए थे। यह वही कमरा है, जिसमें आदरणीया बहिन सावित्रीबाई फोगलाका जन्म हुआ था। इसी कमरेमें बाबाको एक विचित्रानुभव हुआ। आसनपर बैठे हुए बाबा अपने उपास्य चित्रपटका एकटक दर्शन कर रहे थे। देखते-देखते चित्रपट चिन्मय हो उठा। चित्रपटका कण-कण दिव्यतासे परिपूर्ण हो गया। इस अचानक परिवर्तनके साथ-साथ दूसरा परिवर्तन यह हुआ कि बाबाके शरीरमें भी परिवर्तन आ गया। सारे अङ्ग-संस्थान बदल गये। बाबाको सर्वथा विस्मृत हो गया कि मैं संन्यासी हूँ अथवा मैं कभी पुरुष था। बाबाकी परिणति एक किशोरीके रूपमें हो गयी। वर्ण गौर

रंगका है। आयु लगभग चौदह-पन्द्रह वर्षकी है। नव यौवनका उन्मेष हो चुका है। उस गोपी-वपुकी आभा अद्वितीय है। दिव्य परिधानमें किशोर वपुकी शोभा कुछ निराली ही है। अंगोंकी कमनीयता और कान्ति कल्पनातीत है। शरीरके विभिन्न अंगोंपर कंकण, वलय, हार, मुद्रिका, करधनी, पायल आदि दिव्य आभूषण यथास्थान सुशोभित हैं। काली-काली सुदीर्घ घुँघराली केश-राशि पृष्ठ भागपर बड़ी भली लग रही है।

भविष्यमें जो होनेवाला था, उसका यह एक पूर्वाभास था। भविष्यकी एक झलक दिखला करके यह दिव्यानुभव तिरोहित हो गया। यह अनुभूति अब मात्र स्मृतिकी एक वस्तु रह गयी। किसी अचिन्त्य विधानके अनुसार इस दिव्यानुभवके तिरोहित हो जानेमें एक विशेष हेतु था। बाबाके सहयोगसे टीका-लेखनके कार्यको सम्पन्न जो करवाना था।

* * * * *

गठिया रोग से मुक्ति

ऋषिकेशसे लगभग दो-अढ़ाई मील दूर गंगाजीके उसपार स्वर्गाश्रम है। आजकल स्वर्गाश्रममें बड़ी भीड़ रहती है। जिधर देखो उधर भवन-ही-भवन दृष्टिगत होते हैं। सन् १९३७-३८ में स्वर्गाश्रम नितान्त निर्जन स्थान था। चारों ओर सघन जंगल थे। निवास करनेकी दृष्टिसे एक रानीकी छोटी कोठी गंगाजीके तटपर थी और कालीकमलीवालोंके कुछ कमरे थे। सत्संगके लिये श्रीसेठजी स्वर्गाश्रम ग्रीष्म ऋतुमें आया करते थे। देशके कोने-कोनेसे श्रद्धालु सत्संगी भाई लोग आकर श्रीसेठजीके सान्निध्यमें रहा करते थे। सेठजीके साथ बाबाको आना ही था। इन्हीं दिनों बाबाको गठिया रोग हो गया। वे अत्यधिक कष्ट भोग रहे थे।

गठिया रोगकी भीषण व्यथा प्रभु-कृपासे कैसे दूर हुई, इसका वृत्त बाबाके शब्दोंमें इस प्रकार है—

सम्भवतः सन् १९३७ ई. की बात है। मैं स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) में था। मेरे पैरके घुटनोंमें गठिया हो गया। घुटनोंमें सूजन आ गयी। पीड़ा इतनी ज्यादा थी कि रातको नींद नहीं आ पाती थी। दर्दके मारे उठना-बैठना सम्भव नहीं था, फिर तो कहीं भी आने-जानेका प्रश्न ही

नहीं बनता। शौच जानेके लिये लोग मुझे कमोडपर बैठा दिया करते थे। पीड़ाके मारे हिलना-डुलना शक्य नहीं था। बिस्तरपरसे उठाकर कमोडपर बैठा देना और बादमें कमोडपरसे उठाकर स्नान करवाना, यह सब कार्य दूसरोंके द्वारा होता था। उन दिनों श्रीसेठजी मेरा बड़ा ध्यान रखते थे। उन्होंने एक व्यक्तिकी ड्यूटी लगा रखी थी। मेरी पीड़ा देखकर परिचर्या करनेवाले भी घबरा उठे थे तथा यह सोचते थे कि ये बाबा दवा कुछ लेते नहीं और न जाने कबतक ठीक होंगे। एक दिन संध्याके समय की बात है। उस समय मेरी परिचर्याके लिये श्रीहीरालालजी थे। संध्याके समय श्रीगंगाजीके किनारे श्रीसेठजी संध्या-वन्दन करके फिर (गंगातटकी रेतीली भूमि) टिबड़ीपर सत्संग प्रतिदिन किया करते थे। मेरे मनमें आया कि आज टिबड़ीपर श्रीसेठजीके सत्संगमें मैं चलूँ। मैंने श्रीहीरालालजीसे कहा– आप मुझे श्रीसेठजीके सत्संगमें टिबड़ीपर आज ले चलें।

उनको मेरी बात सुनकर आश्चर्य हुआ। जो व्यक्ति चलना-फिरना तो दूर रहा, उठ-बैठ भी नहीं सकता, जिसके घुटनेमें गठियाके कारण बहुत दर्द है तथा अत्यधिक सूजन है, वह व्यक्ति भला टिबड़ीतक कैसे जा सकेगा? टिबड़ी तो बहुत दूर है। श्रीहीरालालजी वेदान्ती थे, अतः व्यंग्य वचन बोलते हुए कहने लगे– स्वामीजी! आप स्थान जानते ही हैं कि कहाँ सत्संग होता है तथा उस स्थानतक जानेवाले मार्गसे भी आप परिचित हैं ही। इसके अलावा आप तो अनन्त-ज्ञान-सम्पन्न, अनन्त-शक्ति-सम्पन्न हैं। आप सर्व-समर्थ हैं। आपके लिये वहाँ जाना कौन-सी बड़ी बात है?

श्रीहीरालालजीके ऐसा कहनेपर मैंने उनसे कहा– मैं सचमुच आज वहाँ जाना चाहता हूँ।

यह सुनकर श्रीहीरालालजीने कहा– तभी तो मैं कह रहा हूँ कि आपकी शक्ति अनन्त है अतुल है, अतः आपके लिये तो वहाँ जाना एक साधारण कार्य है।

श्रीहीरालालजीके मुखसे ऐसे व्यंग्य वचन सुनकर मैंने दृढ़ताके स्वरमें कहा– हीरालालजी! आप ऐसा समझते हैं कि क्या मैं नहीं जा सकता?

श्रीहीरालालजीने फिर वैसे ही व्यंग्य वाक्योंकी आवृत्ति कर दी।